worst

Kamleshwar

कमलेश्वर

Badnam Gali

बदनाम गली

उपन्यास

३

मंच पर भीड़ बढ़ती देख कमेटी के लोगों ने पहुँचकर इन्तजाम अपने हाथ में ले लिया। तभी आरती का थाल लेकर शिवराज भीतर आया। पंडितजी ने चढ़ौती की रकम गिनने का काम शिवराज को सौंपते हुए सरनामसिंह की ओर इस तरह देखा, जैसे उनके लिए शिवराज सबसे महत्त्वपूर्ण है। सरनामसिंह ने पास जाते हुए कहा—'शिवराज, पहले जाके खाना खाओ···यह सब होता रहेगा। पंडितजी इसे संभालिये···।' कहते हुए उसने शिवराज को बाँह पकड़ कर उठा दिया।

'अभी चले जायेंगे।' कहता हुआ शिवराज बाजामास्टर की ओर चला गया। पर्दा गिर चुका था। बाजामास्टर हारमोनियम से उठ चुके थे। वे दोनों नीचे उतरने हो वाले थे कि सरनामसिंह ने जरा डाँटते हुए कहा—'ये क्या लड़कपन है ? सीधे जाओ और खाना खा कर घर पहुँचो···।'

'वहीं जा रहे हैं···मास्टर साहब भी उसी होटल में खाते हैं।' शिवराज बोला और दोनों उतर कर चले गये। दर्शक घरों को लौट रहे थे।

शिवराज और बाजामास्टर पटरी के एक घने पेड़ के अँधियारे में जाकर रुक गये। दूर आती परछाइयों को उनकी आवाज़ से पहचानने की कोशिश करते हुए उनकी बातें रुक जातीं, असम्बद्ध व्यक्तिय के गुजरते ही बातें फिर शुरू हो जातीं, पर सतर्कता और भी बढ़ों जाती। बाजामास्टर ने फुसफुसाकर कहा—'आज भी फूल आये थे।'

'तुम्हारा बाजा कमाल कर देता है। किसी फिल्म कम्पनी में होते तो चमक जाते।' शिवराज ने बड़े उत्साह से कहा।

'यहाँ इन लोगों के साथ टिकूँगा? बाजामास्टर ने कहा। निकट आते स्वरों को सुनकर दोनों सतर्क हुए। शिवराज फुसफुसाया, 'वही है···।' और इस परिचित अपरिचित 'वही' का अनुभव होते ही दोनों ऐसे अलग-अलग से खड़े रह गये, जैसे साथ उगे हुए ताड़ के पेड़, जिन के पत्ते लहराकर भी एक-दूसरे को नहीं छू पाते।

औरतों और लड़कियों की वह टोली हंसती खिलखिलाती आगे बढ़ गयी। रात के अंधेरे में दूर जाते हुए स्वर और भी मोहक हो गये। बाजामास्टर बोले—'बाजे के बोल और इस बोल में कितना फरक है। मन में आता है यह गाना-बजाना सब छोड़ दूँ। काठ की आवाज पर तुम रीझ जाते हो···।' कहते-कहते बाजामास्टर किसी भीतरी व्यथा से उदास हो आये। शिवराज ने हाथ पकड़ते हुए कहा—'आओ तो, थोड़ी दूर तक···।'

सड़कों-गलियों के चक्कर काटकर जब दोनों वापस आये, तब तक सराय के बाहर वाले होटल के महाराज सोने का इन्तजार कर रहे थे। भुनभुनाते हुए उठे और खाने का इन्तजाम करने लगे।

शिवराज ने बाजामास्टर की ओर टूटी हुई बात का क्रम जोड़ने के लिए देखा। बाजामास्टर ने होटल की बुझती हुई अंगीठी की ओर

देखकर कहा—'सबसे बुरा यही लगता है शिवराज कि लोग अजीब हिकारत से देखते हैं। आज बड़ी-बड़ी संगीत सभाओं में जाता होता, तो कदर और ही होती, लेकिन यह सब अपने बस का नहीं, जब तक यों ही घूमता-फिरता हूँ, तब तक लगता है यह सब बेकार है, न इज्जत न पैसा, न दोस्त न हमदर्द। बाजे से उठते ही दूसरा आदमी हो जाता हूँ। लेकिन जाने कैसा नशा चढ़ता है बजाते वक्त। फिर कहीं भी बैठा दो। नरक में बैठ सकता हूं। इन छोटे-छोटे शहरों में घूमते-घूमते जी भर गया। नौटंकी वालों का साथ किया, कितनी ड्रामा कम्पनियों के साथ घूमा, संगीत की ट्यूशनें कीं, पर कहीं भी कुछ ऐसा नहीं मिला, जिससे मन को सन्तोष मिलता। यार सब बेकार है···।'

शिवराज उनका मुंह ताक रहा था, जैसे उसके लिए यह समझ सकना दुष्कर हो।

तभी दो-तीन आदमियों की उधर आती हुई छायाएं दिखायी दीं। चौराहे की गैस बुझकर कांटे में फंसी निर्जीव मछली की तरह लटक रही थी। सरनामसिंह के साथ सूबेदार और जाकिर मियाँ थे। दोनों दड़े की दलाली और मोटर-अड्डे की रखवाली करते हैं। उन्हें साथ देखकर शिवराज हमेशा की तरह कुढ़ गया।

'कमीशन का हिसाब साफ हो गया। सब को दे दिया···यह तुम्हारे···।' कहते हुए सूबेदार ने सौ रुपये के नोट सरनामसिंह के हाथ में थमा दिये। उन्हें अपनी मुर्री में लगाते हुए सरनामसिंह बोला, 'उस कुम्भकरन को तड़के जगा के गाड़ी सफा करवा देना।'

'पहली से जाना है?' सूबेदार ने पूछा।

'क्या कहें सेठ के बच्चे की, रोज ड्यूटी बदलती है। ड्राइवर न हुए कोचवान हो गये, जब चाहा तब जोत दिया। पहली से आऊँगा, शाम की से वापसी है···भूलना मत।'

'सवेरे नम्बर खुलना है···तुम्हारे वगैर दद्दा···।' सूबेदार ने दड़े के नम्बर की ओर इशारा किया।

'अब खोलना !' झुंझलाते हुए सरनामसिंह ने कहा, 'ऐसे मुंह ताकोगे तो हो लिया काम। तुम दो आदमी नहीं संभाल सकते ?' फिर शिवराज से बोले, 'चल भई चल बहुत रात हो गयी।'

सूबेदार और जाकिर मियां अड्डे की ओर चले गये। बाजामास्टर कुछ दूर तक साथ जाकर मन्दिर की ओर मुड़ गये। सरनामसिंह और शिवराज जब अकेले रह गये तो सरनामसिंह ने कहा—'यह तुम्हारा आधी-आधी रात तक घूमना मुझे पसन्द नहीं···रामलीला जाने से पहले खाना खाओ, खत्म होने पर सीधे घर पहुँचो। दोहरी चाबी है, एक अपने जनेऊ में बाँध के रखो···।' कुछ बिगड़ते-बिगड़ते शिवराज की वास्कट देखकर एकदम बात बदलकर बोला—'वह नयी वाली बास्कट किस दिन के लिए है ? मेरी पसन्द की चीज तुम्हें कांटे की तरह चुभती है। ठीक है, पड़ी रहने दो।' कहते-कहते सरनामसिंह तरल हो आया।

शिवराज इस तरलता से परिचित था। यह नयी भी नहीं। ऐसे क्षणों में वह हमेशा घुटता था। लेकिन वह यह घुटन अकेले में पी जाता था। भूलकर या अपनी रौ में कभी सरनामसिंह किसी अन्य के सामने स्नेह जताने लगता तो शिवराज अपनी पिटी हुई पुंसकता के बावजूद भी फुफकार उठता। अपने को खुद-मुख्तार और निर्बन्ध घोषित करने के रोष में यहाँ तक कह जाता—'मैं अपना देख समझ लूंगा। तुम अपना देखो।'

सरनामसिंह तब संकुचित हो जाता। अपनी गलती को बड़ी चतुराई से दबाकर कहता 'आखिर ब्राह्मण का बेटा है।' और उपस्थित आदमियों को जैसे सफाई देने लगता 'इसके तो पैर तक छूना पुन्न है।'

४

और शिवराज !

बड़ी-बड़ी बातें फैली थीं उसे लेकर। इस बस्ती का मुंह शिवराज ने चार साल हुए गुरु पूर्णिमा से एक महीना पहले देखा था। इन बाजारों में घूमते हुए साधू, संन्यासी, तांत्रिक योगाभ्यासी देखे होंगे लोगों ने। ऐसे ही एक महात्मा इधर आ गये थे। ईश्वर-भक्ति से अधिक वे बस्ती की महत्ता पर बात करते और एक आश्रम बनाने का स्वप्न देखते।

कई वर्ष पहले उनकी फेरी शाम को होती थी···'बद्रीधाम यात्रा की प्रतिज्ञा है महाराज जी···एक मन आटा, दस सेर घी, बीस सेर चावल और पाँच सौ रुपये का सवाल है भगवान् जी। भेजो श्रीकृष्ण जी महाराज।' और इसके बाद उनका घंटा गलियों में गूंजता रहता। किसी ने उन्हें दान प्राप्त करते नहीं देखा, पर सुना कौल पूरा हो गया और सर्वदानन्द जी बद्रीधाम की यात्रा पर चले गये।

यात्रा पर जाने से पूर्व उन्होंने निवास के लिये सुनसान में बस्ती से दूर एक कुटिया छवा ली थी। न जाने कहाँ से तैंतीस कोटि देवताओं में से किसी एक की प्रतिमा भी आ गई थी और पीपल का बिरवा भी उग आया था।

'भगवान् की महिमा है। जिस ऊसर पर दूब तक नहीं होती, वहाँ मूरती के परताप से पीपल जम आया।' लोग कहते।

ऊपर वाले की महिमा फैलती गई और सर्वदानन्द जिले-भर में मशहूर हो गये। भगवान् की कृपा से वे दोनों हाथ उलीचने लगे कि एक चमत्कार हो गया। जयकरन मिठाई वाले को बुढ़ापे में पुत्रलाभ हो गया। चार ब्याह किये उसने, पर वंश नहीं चला। आखिर चौथी से कुल का दीपक चमका। सर्वदानन्द का जगह-जगह बखान होने लगा। और तब से जयकरन की घरवाली तो उन्हें गुरु मानकर दासी हो गई। सर्वदानन्द जी ने सेवा स्वीकार कर ली, यही क्या कम था? नहीं तो नारी। पाप का मूल। लेकिन उस पाप की मूल में ऐसा पानी लगा कि हर साल फूलने-फलने लगी। और सर्वदानन्द जी के आश्रम की नींव पड़ गई। जयकरन भगत हो गये। उनकी तो ऐसी लौ लगी कि दुकान नौकर के सिपुर्द कर उन्होंगे सिर मुंड़ा लिया और आश्रम की इमारत के लिए चन्दा करने निकल पड़े। आखिर आश्रम बनना शुरू हुआ और दस बरस पहले गुरु पूर्णिमा के दिन उत्सव, कीर्तन आदि के साथ विधिवत उद्घाटन हो गया। तब से एक लीक बन गई। हर बरस गुरु पूनो पर सत्संग होने लगा। दूर-दूर के साधू-महात्मा पधारने लगे।

चार बरस पहले बड़ा भारी उत्सव हुआ। सर्वदानन्द जी के चेले गाँव-गाँव बस्ती-बस्ती गये। एक महीने पहले से गुरु पूनो के लिये तैयारी प्रारम्भ हुई। आश्रम में अब तक दस-बीस बाबा और आ चुके थे, और सर्वदानन्द जी की मंडली बन चुकी थी। प्रधान शिष्य थे··· आतमानन्द, जात के ब्राह्मण। बाकी चार जात के हलवाई थे···

गुणानन्द, ज्ञानानन्द, और शिवानन्द ।

गुरु-पूनो का आयोजन शुरू हुआ । चार-पाँच महीने पहले आयोजन और भंडारे का इन्तजाम करने के लिए साधु जिले-भर में टिड्डी की तरह फैल गये । भक्तों ने अपने आवारा लड़के आश्रम को अर्पित करते हुए उनके सिपुर्द कर दिये । पर शिवराज की बात दूसरी थी। उसके पिता उस समय जीवित थे । उन्होंने गुणानन्द जी के चरणों में बालक को अर्पित करते हुए बड़े दीन भाव से कहा था···'आपके सिरी चरनों में ही इसका उद्धार है । हम पातकियों के घर में इसका विकास कैसे होगा महाराज । इसे अपने चरणों में सरन देकर विद्यादान दें··· संस्कृत पढ़ जाय, वेद शास्त्र···।'

शिवराज तब तेरह बरस का था । अपने पर्यटन से लौटते हुए स्वामीजी उसे साथ लेते आये थे । तीन-चार लड़के और भी थे, जो सब निर्बोध हिरनों की तरह एक-दूसरे को चकित भाव से देख रहे थे···।

आश्रम पहुँचकर शिवराज को अन्य अनेक साथी मिले, जो और साधुओं के साथ आये थे । ब्रह्मचारी व्रत के लिये करीब तीस किशोरों की जमात जमा हुई । महीना-भर पहले से अन्न त्याग हुआ और लड़कों को नियमावली दे दी गई ।

शिवराज का नया जीवन आरंभ हुआ । सिर मुंड़ा कर चोटी रखा दी गई, पैरों में खड़ाऊँ और शरीर पर पीत अचला । नासिका से लेकर मस्तक तक शिव-तिलक और महीने भर का मौन ।

५

रामायण की महिमा अपार है। गूँगे का साधन बन गई। कोई आवश्यकता होती, तो केवल रामायण की चौपाई से व्यक्त की जाती—मौन। खंडित होने का दण्ड था। गायत्री मंत्र का मन-ही-मन बीस बार जाप। सचमुच ऐसी आराम की ज़िन्दगी की कल्पना उन बालकों को न थी। अधिकांश ब्राह्मणों के बेटे थे। ब्राह्ममुहूर्त में उठकर भगवद्-स्मरण, सूर्य-नमस्कार, मध्यान्ह में भगवत-गीता पाठ और संध्या समय उच्चरित कीर्तन। रोज कीर्तन होता था।

कीर्तन के समय ब्रह्मचारी सबसे आगे बैठे थे, उनके पीछे भक्तों का समुदाय था। मृदंग और हारमोनियम पर कीर्तन हो रहा था। कीर्तन पूरे ज़ोर पर था। स्वामी ज्ञानानन्द रस विभोर हो कर प्रतिमा के सामने नाचने लगे और इधर रंगीले ऐसा लवलीन हुआ कि गश खाकर चित हो गया···झूमते हुए लोगों ने देखा, कीर्तन थम गया और भीड़ एकदम झुक पड़ी···'भगवान की अनुकम्पा हुई है। कुपढ़ा

उपन्यास

बदनाम गली

कमलेश्वर

प्रकाशक :
पंजाबी पुस्तक भण्डार,
दरीबा कलाँ, दिल्ली-६

पुस्तकालय संस्करण
जून १९६८
मूल्य : चार रुपये

प्रमुख वितरक :
हिन्दी बुक सेण्टर
दरिया गंज (मोती महल के पीछे),
दिल्ली-६

मुद्रक :
विवेक प्रिंटिंग एजेंसी द्वारा, हरिहर प्रेस, दिल्ली-६

१

जिले की पांच तहसीलों में सिर्फ दो को रेल जोड़ती है, बाकी तहसीलों के लिये आवागमन के जरिए दो ही हैं—मोटर और इक्के। बरसात में जब मौसमी नदियां और नाले इतराने लगते हैं तो रास्ते कट जाते हैं। कच्चे रास्ते दलदलों में परिणत हो जाते हैं, कंकड़ की सड़कों में भीषण दरारें पड़ जाती हैं, मोटर-अड्डे वीरान हो जाते हैं, इक्के वाले हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं और घोड़े; उनके सिर्फ दो ही काम रह जाते हैं—पूंछ से मक्खियाँ उड़ाना और हिनहिनाना।

नदियाँ लहरा उठती हैं, पर आदमी का आना-जाना नहीं रुकता। नदियों में कड़ाह पड़ जाते हैं और इन छोटी-छोटी बस्तियों के दिलेर लोग उन कड़ाहों में बैठकर बड़ी-बड़ी भंवरें, हाथी-डुबाऊ गहराइयाँ और चौड़े पाट पार कर जाते हैं। जानवरों तक को लंघा ले जाते हैं। खास तौर से आषाढ़ में मंडी की नाड़ी धीमी पड़ जाती है···पूरी बस्ती पर उदासी छा जाती है। सब कामों के सिलसिले टूट जाते हैं। अनाज

की लदाई बन्द हो जाती है। पल्लेदार और तोला बेकार हो जाते हैं। सौदागरों का आना-जाना बन्द। और फिर आढ़तियों की अपनी तिकड़म। बरसात के लिये जिन दिनों अन्न की बेहद खींचातानी पड़ती है, गोदाम भर लिये जाते हैं। थोक बिक्री में तब उनका मन नहीं रमता···ब्याने के वक्त भला कोई अपनी गाय बेचता है। यह तो पाप का भागी होना हुआ। कोई हिम्मत वाला सौदागर मंडी में आ ही गया, तो टका-सा जवाब मिल जाता है—'अपने शहर के लिए भी कुछ रखेंगे सेठजी, बरसात बाद आना।'

मंडी की नाड़ी धीमी पड़ते ही पूरी बस्ती उदास हो जाती है। सच पूछा जाय तो शहर के मध्य में स्थित यह मंडी ही दिल है। इसी की धड़कनों के साथ जीवन की गति बँधी है। सड़कें वीरान हो जाती हैं, गलियों का उछाह मूर्च्छित हो जाता है। तहसील-कचहरी के बाबू लोग पैजामा-कुरता पहने···छतरी लगाये या तौलिया डाले झमझमाते पानी में भी निकल पड़ते हैं, बाकी लोगों के गोल के गोल बैठते हैं।

कव्वाली, गज़ल, रसिया के शौकीन मोटर के अड्डों पर; और आल्हा के शौकीन तमाखू वाले आढ़तियों के यहाँ जमा हो जाते हैं। मोटर अड्डों पर खासा मजमा रहता है। दर्जी और दफ्तरी का काम करने वाले आँखों में सुरमा डालकर पान की गिलौरी मुंह में भरे आलाप लेते हैं—'ए···ए···जी आहें न भरीं···' और तालियों की चटक मस्ती का समां बाँध देती है। ढोलक की ठुमक के साथ मजलिसी लोगों की कमर थाप देती है।

और उधर, सरौते का एक हत्था पैर से दबाये, दूसरा हत्था मशीन की तरह चलता रहता है, रेशम-से बारीक सुपारी के दोहरे कटते जाते हैं। निगाह अपना काम करती है, घुटने के पास रखी आल्हा से 'सुनवां का गौना' गाया जाता है।

हर साल एक-सी मुसीबत सहते-सहते अब लोग अभ्यस्त हो गये हैं। इसलिये अजीब उदासी-भरी बेफिक्री के दिन होते हैं ये। बड़े

उदास, पर बड़े मोहक। छतनार इमली के पेड़ों से पानी झरता रहता, उसी के नीचे भुट्टे भुनते। बरसते पानी की पेंगों पर किसी अल्हैत का पौरुष-भरा स्वर आता—'बांध सिरोही दोनों भिरि गये, खटखट चलन लगी तलवार।' और बादलों की सेना गड़गड़ा कर जूझ जाती। सन्नाटी हवा के झोंके पानी की धार को दोनों की तरह बिखेर देते। आल्हा की तलवार की तरह बिजली चमककर कड़कती चली जाती। इमली के फूल, पिलछहें-सफेद नन्हे फूल, पारिजात की तरह झर-झर बिखर जाते।

गोबर से लिपे-पुते घरों के आँगनों में वर्षा के प्रकोप को कम करने के लिए लोढ़े से बढ़नियां दब जातीं और देवियों की मनौतियाँ होतीं। मंडी के फड़ निर्जीव नज़र आते। बादल का रुख देखकर गल्ले का भाव घटता-बढ़ता रहता···।

बरसात खत्म होते-होते दिवाली-दशहरे की धूम शुरू होती। घरों को बहुरिया की तरह सजाया जाता है। फूली और सूजी कच्ची दीवारों को खरोंच-खरोंच कर मिट्टी से लेप लेते। मुंडेरों की काली पड़ी हुई घासें साफ हो जातीं। दरवाज़े गेरू से पुत जाते। द्वार और ताखों पर अनगढ़ हाथों के बेल-बूटे बनते। कोई दरवाज़े पर तिरंगा झंडा बनाकर और 'जै हिन्द' लिखकर सजावट पूरी कर लेता। फिर रौनक के दिन। रामलीला की धूम। मंडी का धमाँदा साल भर इसीलिये इकट्ठा होता था। मंडली आती और झम्मनलाल की मंडी में स्टेज बनता।

२

शाम से ही रामलीला की धूम थी। भीड़ जमा हो चुकी थी। दर्शकों में शोर मच रहा था।

पर्दा उठने में देर होती देख पंडितजी करतालें लेकर मंच पर आ गये। दायीं ओर पुरुष-समूह था और बायीं ओर नारियों का। बीच की पतली राह पर झगड़े-फसाद और औरतों के साथ छेड़-खानी करने वालों की हरकतें रोकने के लिये जगह-जगह बजरंग मंडली के स्वयं-सेवक खड़े थे। पंडितजी ने एक निगाह जन-समूह पर दौड़ायी और कुछ बोले, जो जनरव में उभर नहीं पाया। करतालें बजायीं तो निकट का भक्त समुदाय शान्त हुआ, लेकिन पीछे वालों का शोर ऊँचा हो गया। पैर वाले हारमोनियम पर बाजामास्टर दर्जी की तरह बैठे थे। उन्हें पंडितजी के इंगित का इन्तजार था। पंडितजी पूरी आवाज़ से चीखे—'सज्जनो और देवियो!' अपनी आवाज़ का असर न होते देख उन्होंने बाजामास्टर को इशारा किया।

बाजामास्टर ने हारमोनियम पर रखे हुए फूलों को सामने रखी रामायण की पोथी पर बिखरा दिया और कुंजियों पर मकड़े के टाँगों की तरह उंगलियां टिका दीं। पैरों में हरकत हुई और धुन फूट पड़ी—'रघुपति राघव राजाराम···' पंडितजी की करतालें ऐसे बोल पड़ीं जैसे कोई गाँव की गँवार वधू लच्छे और झाँझों के साथ पैरों में खड़ाऊं पहने धीरगति से चली जा रही हो। तबलची भीतर मूर्तियों का शृंगार कर रहे थे। पुरुषों में थोड़ी शान्ति छा गयी, लेकिन औरतों की मजलिस बदस्तूर बातों में मशगूल थी! एकाध आवाज़ें आकर मंच से टकराईं—'लीला शुरू करो···पर्दा उठाओ!'

शृंगार में देर थी। कुछ परेशान होते हुए पंडितजी ने करतालें बजाना रोकते हुए बाजामास्टर से कहा—'फिल्मी बजाओ···फिल्मी। और खुद उसका असर देखने के लिए बगलों में हाथ देकर शिला की तरह खड़े हो गए, जैसे यह शोर उनकी सामर्थ्य को चुनौती हो।

बाजामास्टर ने बाल झटके और हारमोनियम से एक बड़ी दर्द-भरी सदा उठी—'जब तुम्हीं चले परदेस लगाकर ठेस···' बाजामास्टर के हरमोनियम से उठती हुई स्वर-लहरियाँ वातावरण पर छाने लगीं और जब एक चीत्कार के साथ गीत की धुन समाप्त हुई तो फुसफुसा-हट उभरने लगी। कातर होकर पंडितजी ऊँची आवाज में बोलने लगे—'माताओ और बहनो! आप लोगों से विशेषकर एक बात कहनी है। आप देवियाँ मरियादा पुरुषोत्तम 'भगवान रामचन्द्र की लीलाएँ देखने के हेतु आती हैं, लेकिन अपनी घरेलू चर्चा यहाँ भी चालू रखती हैं। सो ऐसी माताओं और बहिनों के लिए उपदेश है कि···' पंडितजी मोटी-पतली आवाज में इस तरह बोले जा रहे थे। जैसे कोई उनकी चाबी कम-ज्यादा करता जा रहा हो। तभी शोर और बढ़ गया। पंडितजी लाल पीले होकर चीखे—'जो इन उपदेशों पर कान नहीं देंगी···मैं कहता हूँ कि जो इन उपदेशों पर कान नहीं देंगी···भगवान की लीला में हर तरह से विघ्न डालेंगी, सो अगले जन्म में

छछूँदर की योनि पावेंगी।' शाप देकर पंडितजी पर्दा सरकाकर एकदम अन्तर्धान हो गए। पर शोर बढ़ता गया और स्वयं भगवान के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे स्थिति को काबू में लाएँ। इसलिए गोला दगा और तबले पर पड़ती थापों के साथ हारमोनियम के मन्द स्वर के सहारे पर्दा धीरे-धीरे उठने लगा।

वनवासी राम, लक्ष्मण और पराक्रमी पवनसुत के दर्शन होते ही जनता ने भक्ति से घोर जयघोष किया—'बोल राजा रामचन्द्र की जै···बोल लखन लाल की जै···पवनसुत हनुमान की जै···।' भीड़ ने भक्ति से घोर जयघोष किया—'बोल राजा रामचन्द्र की जै···।'

'रामचन्द्र कृपालु भजुमन हरण भव भय दारुणम्' के साथ आरती होने लगी। शान्ति में सदैव पवित्रता का बोध होता है···चारों ओर पावनता बरसने लगी। संगीत, स्वर और श्वासें तक संयम में बँध गईं। रोते बच्चों के मुँह में माँओं ने स्तन दे दिये। रामचन्द्र जी कहीं बीड़ी पीते न देख लें इसलिए बीड़ियों की चिनगारियाँ धरती से रगड़ कर बुझा दी गईं।

आरती समाप्त होते ही पवित्र ज्योति दो थालों में स्थानान्तरित हो गई। नारियों के समूह में आरती का थाल ले जाने वाले कई मुरीद थे। लेकिन धोती-कुर्ता और वास्कट पहने हुए शिवराज के हाथों में थाल थमाते हुए पंडितजी ने पूछा—'ड्राइवर साहब आए हैं?'

'आए होंगे···।'

'तुम्हें नहीं मालूम?'

'आखिरी मोटर लेके आने वाले थे, आ गई होगी तो आये होंगे···।' कहते हुए उसने थाल लिया और नारियों वाले भाग में जा घुसा। जाते-जाते मास्टर की ओर उसने देखा था, आँखें मिलते ही किसी साजिश की परछाईं उनमें भर गई थी। बाजामास्टर ने मुस्कराकर भीड़ के एक कोने पर दृष्टिपात किया। अपनी गलती समझकर उसकी गर्दन झुक गयी, अंगुलियाँ हारमोनियम के तारों के पिंजरे वाले हिस्से

में कुछ सुधारने लगीं। शिवराज को औरतों में आरती घुमाते देखकर पाकड़ के नीचे बैठे जवानों के जमघट में कानाफूसी शुरू हुई—'बड़ा हरामी है साला…।'

'बड़े बुत्ले से रहता है…डिराइवरों का माल खाता है।'

'जनखा है ससुरा…सरनामसिंह के बल पर कूदता है…।'

'कोई कह रहा था, सरनामसिंह का रिश्तेदार है…।'

'रिश्तेदार नहीं तो…। वह ठाकुर ये ब्राह्मण…अरे उसने पाल रखा है।'

'देख…देख…' एक ने जल्दी से दूसरे की बाँह पकड़ते हुए दिखाया, 'शान्ति से बात कर रहा है, निकल के इधर आये तो साले की कुटुम्मस कर दी जाय।'

'अच्छा-अच्छा खेल देखो…।' एक ने कहा। उधर मंच पर न जाने कब मेघनाद-लक्ष्मण युद्ध हो चुका था।

बाजामास्टर और तबलची अपने संगीत से उसके प्रभाव को गहन कर रहे थे। दर्शक उत्सुकता से साँस रोके देख रहे थे कि औरतों वाले हिस्से में कुहराम मच गया। जैसे नीचे से ज़मीन धसक गयी हो। बचत के लिए वे दिशा-ज्ञान भूलकर इधर-उधर भागने लगीं। स्वयंसेवक एकदम भाग पड़े। जनता उठकर खड़ी हो गयी।…मंच पर सन्नाटा छा गया। मेघनाथ मंच से उतरकर घबराये-से उधर भागे। कमेटी के लोग उधर पहुँच गये थे। स्थिति का पता चलते ही हंसी का फव्वारा फूट पड़ा। और लोगों ने फौरन फाटक की तरफ भी देखा—रंगीले पेड़ से उतर कर अपनी धोती का फेंटा कसते हुए उधर भागा जा रहा था…।

'इसी की बदमाशी है…और कोई नहीं हो सकता…।'

'यह सब तुम्हारा सर चढ़ाया हुआ है सरनामसिंह, नहीं तो मजाल है कोई विघ्न डाल दे इस तरह…।' मंडी के जगदम्बा कह रहे थे।

सरनामसिंह को हंसी आ गयी 'दद्दा, तुम भी बस लड़कों की

तरह बतियाने लगते हो, जब तक रंगीला कोई बदमाशी नहीं कर लेगा, मानेगा नहीं···मैं डाँट दूँ, पर कोई फायदा नहीं, मनमौजी है ससुरा···।'

तब तक स्वयसेवक अपने पौरुष का प्रदर्शन करते हुए गनगौरी साँप लटकाये सामने आ गया।

'फैंको उधर···।' हरीचन्द बोले, 'औरतों की भीड़ में डाल गया बदमाश। कल से निगाह रखो, घुसने मत दो साले को यहाँ···।'

'अच्छा, अच्छा···सब ठीक हो जायेगा,' सरनामसिंह ने कंधे से लोगों को बैठाते हुए कहा। फिर वहीं से चीख नाटक वालों से बोले —'शुरू करो शुरू करो लीला···भूचाल नहीं आया था।' कहते-कहते उसे फिर हँसी आ गयी। नयी बात तो थी नहीं, न जाने रंगीले कौन-सा नया तमाशा खड़ा कर देता? उसके लिए कोई मुश्किल है। होली, दिवाली मेले-तमाशों में जब तक यह सब न हो, सूना-सूना लगता है।

'रंगीले तुम्हारी मोटर पर नौकर था, अब नहीं है क्या?' हरीचंद पूछे जा रहे थे।

'सेठ के मुकदमे में गवाही देने से इनकार कर गया, फिर कहीं नौकरी चलती है। हमने भी जोर नहीं दिया, नहीं तो गवाही दिलवा देना कोई मुश्किल नहीं था···।'

तभी सरनामसिंह की बात काटकर जगदम्बा बोल पड़े—'गुड़ खाय गुलगुले से परहेज़। तुम भी ठाकुर साहब, बस···साला पेशेवर गवाह है, कोई ईमान है उसका? पैसे का डोल नहीं होगा सेठ के यहाँ, जिसने चार पैसे से हथेली गरमा दी, उसी की तरफ हो गया होगा···।'

ये बातें चल ही रही थीं कि लक्ष्मण जी को शक्ति लग गयी। जन-समूह अवसाद की भावना में डूब गया। चारों ओर नीरवता छा गयी। जैसे यह अप्रत्याशित घटना आज ही हुई हो, सबके लिए नयी हो।

लीला के साथ-साथ रामायण बाँचने वाले गुरुजी चुप हो गये। रण-संगीत थम चुका था। आसन्न भय और शोक की कालिमा चारों

ओर छा गयी। तभी उस गहन उदासी और अवसाद से भरे क्षण के बीच पृष्ठभूमि से सूत्रधार की ढाढ़स बँधाती हुई आवाज उभरने लगी '''बन्धुओ ! यह कौतुक जानहिं जन सोई, जा पर कृपा राम की होई'''जगत आधार श्री लक्ष्मण जी मूर्च्छित होते भये हैं, उनके शक्ति लगी है। पर ये ही स्थल संग्राम की शोभा है। रघुनाथ जी के कौतूहल चरित्र कौन सांसारिक जान सके हैं, परन्तु इस चरित्र को वो ही जानेगा, जिस पर रघुनाथजी की कृपा होगी'''तो सज्जनो ! संध्या होती भयी है। सेनाएँ विश्राम के हेतु लौट जाती भयी हैं। महावीर जी गोदी में लक्ष्मण जी को लिये आते हैं। यह दशा देख रघुनाथजी ने बड़ा दुख माना'''।'

लक्ष्मणजी रामचन्द्र जी की गोद में सिर रखे मूर्च्छित पड़े थे। जामवन्त के बताने पर सुषेण वैद्य को जब हनुमान जी खटिया समेत उठा ले आये, तब कहीं दर्शकों की जान में जान आयी। सुषेण वैद्य को सुप्तावस्था में उठा लाने पर पहली हँसी फूट पड़ी, मूर्च्छित लक्ष्मण के अधरों पर। हँसी फूटती देख, पंडितजी ने विंग से निकलकर घुड़कते हुए उन्हें चादर से ढक दिया।

हनूमान जी बूटी लाने के लिये प्रस्थान कर चुके थे। रात ढलती जा रही थी। रामादल के बानर शोक-संतप्त से चारों ओर घिरे खड़े थे। और जब रामचन्द्र ने रुँधे हुए गले से कहा—'सुत वित्त नारि भवन परिवारा, होहिं जाहिं जग बारहिं बारा। अस विचारि जिय जागहु ताता, मिलहि न जगत सहोदर भ्राता !' तब सुनते-सुनते न जाने कितनों की आँखों के बाँध टूट गये। सिसकियाँ फूट पड़ीं। समस्त जग, चराचर व्याकुल था, शोक-संतप्त था। हिचकियाँ बँध गयीं। सरनामसिंह अपनी आँखों को बार-बार पोंछते जा रहे थे, पर आँसू नहीं थमते थे। पास बैठे लोगों की सिसकियों के बीच हर एक का मन डूबता जा रहा था। कोई ढाढ़स बँधाने वाला नहीं था। जैसे सबके मन में यही था कि सूर्योदय से पूर्व हनुमान जी संजीवनी जड़ी लेकर आ

जायें···यह अनर्थ न हो। पर समय जैसे उड़ा जा रहा था। सूर्योदय की बेला निकट आती जा रही थी। रामचन्द्रजी व्याकुल आकाश-मार्ग की ओर निहार रहे थे। और तब बाजामास्टर का हारमोनियम मंद स्वर में गुनगुनाया और रामचन्द्र जी ने विलाप करते-करते जरा खंखार कर गाया—'आ जाओ कि मूर्च्छित है लछमन···अब रात गुजरने वाली है—अब रात गुजरने वाली है···।'

भीड़ में से एक हाथ उठा और उस हाथ की धरोहर विंग में खड़े पंडितजी के पास पहुँच गयी। एकदम मंच पर जाकर पंडितजी ने आभार प्रदर्शन किया—'श्री रामचन्द्र जी के विलाप पर प्रसन्न होकर सेठ बदामीलाल ने भगवान् जी के श्री चरणों में पाँच रुपये अर्पण किये हैं···हम उनका मंडली की ओर से शुक्रिया अदा करते हैं।' फिर तो तांता लग गया। वाकई लक्ष्मण-शक्ति वाली लीला ऐसी निकली, जैसे पहले कभी नहीं हुई। भक्तों का समुदाय उदारता से उमड़ पड़ा। मंच पर भक्त-समुदाय की भीड़ लग गयी, लोग जा-जाकर खुद रुपये देने लगे। जगह कम पड़ी तो तलबची थोड़ा विंग में सरक गये। रामजी की चढ़ौती देखने के लिये मूर्च्छित लक्ष्मण जीने चदरा सरकाकर देखने भर के लिये मुंह खोल लिया। तब तक एक भक्त ने, अपने लिये जगह बनाते हुए विंग का पर्दा उलट दिया तो हनुमान जी बगल में गत्ते का द्रोणागिरि रखे, बड़ी मौज से बीड़ी पीते हुए अपने प्रवेश के इन्तजार में बैठे नजर आए।

है तो क्या, प्रेम तो सबके मन में एक जैसा है।' एक भक्त ने बेहोश रंगीले के मस्तक पर भगवान् की चरण-रज लगाते हुए कहा 'ऐसे में पंछी उड़कर स्वर्ग लोक को जाता है···गणिका, अजामिल के वृत्तान्त सामने हैं। कौन ऐसी मृत्यु नहीं चाहेगा?'

स्वामीजी को खबर हो गई। 'हरे राम, हरे कृष्ण' जपते हुए स्वामीजी अपनी कुटिया से निकल कर आये। रंगीले को चित्त देखकर विह्वल हो गये। आँखों में अश्रु छलक आये। गद्गद कंठ से बाहें पसारते हुए बुदबुदाये···'हे प्रभु! तेरी माया अपरम्पार है।' और रंगीले को जैसे अपने से बड़ा स्वीकार करते हुए बोले···'यही समाधि की प्रथमावस्था है।'

जो ब्रह्मचारी छींटे देने के लिए पानी लाया था, वह शिवराज था। सरनामसिंह ने उसके हाथ से लोटा लेकर, झाड़-फूंक करने वाले की तरह मुँह पर छींटे दिये। एक लोटा पानी पड़ गया, पर रंगीले की दाँती नहीं खुली। कुछ और उपचार के बाद उसने आँखें खोलीं और सामने खड़े शिवराज की ओर एक क्षण देखकर टाँगें पकड़कर पैरों पर लोटने लगा—'यही रूप है···हाय···हाय···।'

'ब्रह्मचारी के रूप में भगवान का रूप देख रहा है।' सरनामसिंह ने कहा और रंगीले शिवराज के पैर छोड़ता ही नहीं था—'सरन···इन चरनों में सरन दो···मुक्त करो···।' शिवराज घबराया-सा पैर छुड़ाने की कोशिश कर रहा था। कई मिनट बाद रंगीले संसार में लौटा।

'बिल्कुल यही रूप था।' आधी रात को मोटर वालों के संग लौटते हुए शिवराज की ओर इशारा करके रंगीले अपनी अवस्था का वर्णन कर रहा था—'हाथों में धनुष-बान, सर पर मुकुट। न जाने कैसा तेज फूट रहा था। आँखें मुंद गयीं···चारों ओर वही रूप, वही छवि···दद्दा।' सरनामसिंह की बाँहें पकड़ते हुए उसने समझाया—'सन्नाटा छा गया। भीतर रोशनी जग गयी···साक्षात भगवान खड़े

के सामने। फिर नहीं मालूम क्या हुआ···बड़ा जुल्म किया तुमने, राम कसम···बेहोशी नहीं थी···।'

उस रोज से ब्रह्मचारियों में शिवराज की और भक्तों में रंगीले की प्रतिष्ठा बढ़ गयी। दोनों में भगवान का 'अंश' प्रवेश कर गया था···काया पवित्र हो गई भाई। रंगीले निकलता तो लोग जबरदस्ती रोककर बैठा लेते। घंटों उससे बातें करते और उसका प्रवचन सुनते —'इसी तरह सुभाष बाबू के मन में भारत माता बैठ गयी थीं। वैसे वे विक्टोरिया को बहुत चाहते थे, पर माता तो माता। भेष बदलना पड़ा उन्हें, वन-वन घूमे और जाके अलख जगाई। इसी से आजादी मिली। उन्हीं के प्रताप से गाँधी बाबा और नेहरू जी ने बागडोर सँभाली।' फिर भोंडियों की तरह आँखें चढ़ाकर शून्य में देखते हुए कहता—'हमें भी भेष बदलना है, वन-वन घूमकर अलख जगाना है···।'

'काहे के लिए रंगीले बाबा।' पनवाड़ी पूछ लेता।

जवाब न देकर रंगीले मुस्कराता हुआ उठ जाता। सरनामसिंह के पास जाकर कुछ उगाहता और फल-फलारी लेकर आश्रम की ओर मुँह करता। ब्रह्मचारी शिवराज के लिए रंगीले रोज कुछ न कुछ लेकर जाता। आश्रम के ब्रह्मचारी ऐसे दान को स्वीकार करते थे।

तीन-चार रोज शिवराज रंगीले का फलाहार स्वीकार करके स्वयं भंडारे में दे आता था, पर बाद में उसे कुछ खलने लगा। रंगीले उसे अपने पास बैठा लेता, तरह-तरह की बातें करता—'तुम्हारे हाथ कित्ते मुलायम हैं। धन्य हैं तुम्हारे माँ-बाप। भइयन, कभी चला करो··· शहर घुमा लाया करें?' पर मौन व्रत के कारण शिवराज हाँ-हूँ में उत्तर देता। एक रोज किसी ब्रह्मचारी ने स्वामीजी से शिवराज की शिकायत कर दी—'ये मौन व्रत का पालन नहीं करता।' तभी से शिवराज कतराने लगा।

६

गाड़ी शाम तक वापस आ जाती थी और वैसे भी इन रास्तों पर रात में सवारियों के माल-असबाब से भरी लारियाँ लाना कम खतरनाक न था। न जाने कब लुट जायें। उस रोज सरनामसिंह एटा के बाज़ार से गेरुआ सिल्क की धोती खरीद लाया, रंगीले को देते हुए बोला—'सुन, उस ब्रह्मचारी के लिए है। कैसा कोमल लड़का है, किसी अच्छे घराने का मालूम पड़ता है।'

एकाएक शिवराज की ओर सरनामसिंह को आकर्षित होते देख रंगीले ने आँखें फाड़कर देखा। गुरु-पूनो पर ब्रह्मचारियों का मौनव्रत टूटने के बाद रंगीले का समय अधिकतर वहीं बीतने लगा। उसे भेष बदलने की धुन थी।

एक रोज़ सहसा दोपहर वाली लारी पर शिवराज को आया देख सरनामसिंह देखता रह गया। लारी छूटने में देर थी। अड्डे पर खामोशी छाई थी। इमली की घनी छाँह के नीचे ड्राइवर और अन्य कर्मचारी

टांगें फैलाये पड़े थे। सूबेदार ने शिवराज को देखकर सरनामसिंह को निशाना बनाते हुए कुछ मज़ाक कर दिया। ज़ाकिर मियाँ खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले—'इधर-बुला ला ब्रह्मचारी को···।'

'ऐ मियाँ, गड़बड़ मत मचाओ, सुनने दो। हाँ सिंहजी, दूसरी तान छिड़े।'

'उधर आओ खटिया पर···' सरनामसिंह ने कहा और खुद अपना बैंजो उठाकर उधर चला गया। सारे लोग उठकर खटिया के इर्द-गिर्द जमा हो गये। टूटे हुए ब्लेड के टुकड़े से सरनामसिंह ने बैंजो के तारों पर एक इशारा किया। एक ध्वनि झनझनाती हुई बिखर गयी।

इमली के नन्हे-नन्हे फूल अलसाये से झर रहे थे।

छप्पर पड़े मोटर अड्डे के दफ्तर से टिकटों का हिसाब करते हुए दो-तीन व्यक्ति निकले और आकर खड़े हो गये। लाल रंगी हुई लारी नम्बर पर लगी हुई है। चार-पाँच सवारियाँ उसकी खिड़कियों से सिर टिकाये ऊँघ रही हैं। अभी देर थी लारी छूटने में। स्टेशन से इक्के अभी नहीं आये हैं। तीन तहसीलों में जाने के लिए सवारियों को वहीं आना होता है। मील भर दूर से कंकड़ की सड़क पर लोहे की हाल-चढ़े इक्के के पहियों की खड़खड़ाहट गूंजने लगती। यह आवाज़ सूबेदार को सतर्क कर देती है। जितनी सवारियाँ उतना कमीशन। पर इस वक्त सब खामोश हैं। सड़कों पर धुएँ की तरह धूल के बादल घहरा रहे हैं।

७

अड्डा शहर के छोर पर था, फरलांग-भर बाद श्मशान फैला पड़ा था और उसके बाद झुके हुए नीमों की दोहरी कतार के बीच यह लम्बी सड़क चली गयी थी। चुंगी पार करते ही बस्ती की सीमा समाप्त हो जाती। यह सड़क ही रीढ़ थी, जिसमें पसलियों की तरह सत्तावन गलियाँ इधर-उधर से आकर मिलती थीं। बड़े शहरों को मिलाने वाली यह चौड़ी सड़क, जिसके दोनों ओर यह छोटी-सी बस्ती बस गयी थी···मील-भर की लम्बाई और उतनी ही चौड़ाई। उत्तर-पश्चिम से दक्खिन-पूरब की ओर रुख था इसका। पश्चिमी सिरे पर ज्यादातर वकील-मुख्तार और ज़मींदारों के मकान थे, पूरब की ओर छोटी जाति और छोटे व्यापारियों, काम-धन्धे वालों का बोल-बाला था। आबादी बढ़ने के साथ-साथ अड्डा निरन्तर पूरब की ओर खिसकता जाता। ये मोटर वाले ठीक इसी तरह बर्दाश्त किये जाते थे, जैसे घरों में अपने आप जड़ें फोड़ लेने वाला पीपल का पेड़।

'उखाड़े कौन···सर पर सनीचर सवार है जो घर बैठे विपत मोल ले लें। लेकिन घर में रखे भी कौन···चुड़ैलों का डेरा।'

जैसे पीपल वाले भुतहे मकान वीरान हो जाते, वैसे ही अड्डे के आस-पास का हिस्सा हमेशा वीरान रहता। 'मोटर वाले पैदाइशी बदमाश होते हैं साहब। चोर, डकैत, पियक्कड़, फर्राश···ज़ालिम बेरहम लोग···।'

पर उस बैंजो से न जाने कैसा मीठा, उदास राग फूट पड़ा। किसी के जुल्म से कराहते हुए उसके तार कँपकँपा कर थक जाते, फिर उस पैने ब्लेड के टुकड़े का स्पर्श उन तारों को अनवरत झनझनाता जाता और वे बेरहम उँगलियाँ कोमल पग की तरह, लय के साथ उन कीलों पर नाचने लगतीं।

कच्चे मकान की बाँस वाली खिड़की पर पड़े हुए टाट के पर्दे से एक चेहरा झाँकता और झुंझलाकर सिर भीतर कर लेता। सरनाम बैंजो की कीलों पर से निगाह हटाकर इमली के झरते हुए फूलों की ओर देखकर गुनगुनाता—

'नदिया के ईरे-तीरे दुय धन रुखवा, एक रे महूलिया एक आम रे।
नगर अयोध्या में दुय वर सुन्दर इक लछमन इक राम रे।'

बैंजो का झुंझनाता स्वर और भरी हुई साँस की आवाज···

'बेर-बेर बेटा तोकों मैं बरजौं वृन्दावन मति जाऊ रे।
उतैं वृन्दावन बाघ-बघनियाँ, जा देस में कामिनि तुम्हारे रे।'

बैठे लोगों के सिर झूमने लगते, और अपने में डूबा सरनाम पागलों की तरह तार झनझनाता हुआ ऊँची हुँकार में गाता—

'देउ न मोरी मैया ढाल तरवरिया वाहि वृन्दावन जाऊँ रे
बघवा कौ मारों औ लावौं अपनी कामिनियाँ बचाय रे।'

और टाट के पीछे खड़ी कुढ़ती हुई बंसिरी सोचती—'मुझे सुनाता है। बड़ा जुझारु बना है। शराबी-कबाबी, डरपोक।' अपने पर दृष्टि दौड़ाती—इस तन पर पड़े हुए इतने दाग, इतने घाटों का पानी और

यह मन की जलन, कहाँ ले जायेगी तुझे ? यह हाय तुझे राख करके छोड़ेगी सरनाम। यह हाय न होती तो तू आज फलता। किसी कच्चे घर के आँगन में बैठकर गाता, कोई सुनाता। इमली के सूखे फूल नहीं, काजल लगी आँखों से रसधार झरती। धूल के उड़ते हुए बवंडर नहीं, गोबर लिपी ठंडी धरती होती···महावर रंगे पैर होते और लिखना से भरी ऐपन की दीवारें। हर तीज-त्योहार होता, रास-रंग होता। जीने, मरने वाला कोई साथ होता। पर तू अकेला मरेगा··· अनजाने आदमियों के बीच। किसे अपना कहेगा ? किसी दिन मोटर में बैठा-बैठा मर जायेगा, कोई पेट्रोल छिड़ककर जला देगा ! या भागते-भागते किसी घहराती नदी में घड़ियाल, कुआँ के बीच फेंक आयेगा। यही होगा तेरे साथ। एक दिन मैं सुनूंगी। तेरी खबर मुझ तक आयेगी सरनाम। उस दिन घी के दिए जलाकर रात भर दिवाली मनाऊँगी। तेरी उस दिन की खुशी···कौड़ियों की तरह चमकती हुई आँखें भूल नहीं पातीं। कितना बड़ा एहसान किया था मुझ पर। शरम नहीं आई थी कहते हुए—'सौदा खत्म। मगन मिस्त्री नहीं ले सकता इस औरत को।' औरत को। किधर से औरत थी मैं तेरे लिए ? औरत समझकर अहसान कर रहा था ? तेरी मैं कोई नहीं थी ? बाजारू समझा था। 'जब तक ये रुपया पूरा नहीं चुका देगा, तब तक तू रख इसे।' कहते हुए तेरी जीभ नहीं गिर गयी···आज ढाल तलवार माँगता है···कामिनी को बचायेगा···मेहरा।'

बंसिरी की आँखें क्रोध से जलते-जलते न जाने क्यों रुआँसी हो आयीं···जैसे आँख और धुएँ के बीच झिलझिलाती हुई तरल-सी चिकनी लहरियाँ। जलती हुई लकड़ी से सुनसुना कर बची हुई एकाध रस-बूंद किसी रेशे से छलछलाकर निकल आयी। तप्त रस-बूँद, जिसे आग की जलन क्षण-भर में सोख लेती है···सचमुच सब तेरे कारण हुआ···तू, सरनाम तू। सरनाम···सरदार···सरताज···किसने रखा था नाम तेरा ?' पर केवल एक क्षण···तेरा ये ताज जिस दिन गिरेगा,

उसी दिन को देखने के लिए ज़िन्दा हूँ। औरत कहता है न मुझे। तेरे कारण औरत हुई···नहीं तो किसी की घरवाली होकर चैन से मर जाती। तूने अपनी समझ से घरवाली बनाया है, पर तेरे लिए औरत रहूँगी। औरत।'

दूर स्टेशन से आती सड़क पर इक्कों के पहिए गड़गड़ा उठे। सूबेदार उड़ती धूल के पार ताक कर चीखने लगा। हाथ में लिये मोटर के भोंपू को बीच-बीच में भों-भों बजा देता। उसे सुनकर कटती हुई लारी के लिए मरियल घोड़ों की पीठ पर सड़ासड़ चाबुक चिनकने लगते और खडर···खड···खडर···खड करते भागते हुए इक्कों पर हिचकोले खाती सवारियाँ डर की मारी, रक्षा के लिए पीछे मुँह घुमा लेतीं। फेन से सने मुँह और लगाम चबाते हुए घोड़े जब रुकते, तब पता चलता—पीछे बँधा टीन का बक्स रास्ते में गिर गया या गौने का घड़ा दौंची में भट्ट से टट गया है।

अड्डे पर हंगामा मच गया। पीछे आते हुए इक्केवान चाबुक की डंडी पहिए में घुसेड़े किडर···किडर···करते, अपने आगमन की सूचना देते भागते आ रहे हैं—'सन्नाम सिंह डिलाइवर की लारी घड़ी देख के छूट जाती है।···फौज का डिलाइवर रहा है सरनाम सिंह। मोटर चलायेगा तोफान मेल की तरह, पर मजाल है एक पिल्ला तक दब जाय···टकराने की तो बात दूर रही···।'

'काहे असगुनिया बोल बोलते हो भाई।'

पर सगुन, असगुन से दूर सरनाम का मन जब उचाट हो जाता, तब उसे लगता कहीं कुछ हो न जाय। कौन जाने हाथ न सधे और किसी पेड़···पुलिया से···लड़ाई में किन-किन जगहों पर नहीं दौड़ाई

मोटर···मौत के मुंह में जा-जाकर निकल आया, पर ऐसा तो कभी नहीं लगा। जब मन उचाट होता है, तब यह बैंजो और कोई बहुत ही बेहूदा-सा गीत। लेकिन यह बैंजो और भी तोड़ देता है। उसका मन तब कहीं नहीं लगता। भरती हुई सवारियों पर एक निगाह डालकर वह सूबेदार से पूछता—'चौकस!' और उत्तर की परवाह किये बगैर छप्पर वाली कोठरी में घुस जाता। मोटरों की फटी हुई गद्दियों के नारियल वाले ढेर में हाथ डाला। एक बोतल हाथ में आयी। गट, गट···एक, दो, तीन, चार, दस, ग्यारह, बारह घूंट। और अपने दाँतों को चूमता हुआ वह अपनी सीट पर आ गया। सूबेदार घड़ी देखकर बोला—'बीस मिनट हैं।'

जैसे एकाएक सरनाम को खयाल आया। उतर कर शिवराज के पास पहुँचा, पूछा—'चल रहे हो पण्डित।'

'हाँ, गाँव तक जाना है···।'

'आगे की सीट पर बैठ जाओ···' फिर सूबेदार से बोला, 'एक ड्योढ़े का काटना।' कहकर खुद शिवराज की बाँह पकड़कर लाया और खिड़की खोलकर अपने बराबर वाली सीट पर बैठा लिया।

मोटर ठीक समय पर छूट गयी। सरनाम की बाँहें शिथिल थीं आज। अब भी वह बैंजो बजाता है, तब बाद में ऐसा अहसास होता है, पर शिवराज की उपस्थिति जैसे उसे प्रकृतिस्थ किये थी। पूछा, 'अरमसराय उतरोगे, जा क्यों रहे हो?'

'पिताजी की तबीयत खराब है, अरमसराय उतर कर नौ मील दक्खिन जाना है।' शिवराज ने कहा।

'और कौन-कौन है घर पर?' सरनाम ने फिर पूछा।

'बस पिताजी हैं, दो सौतेले भाई अलग रहते हैं।'

'और माँ?'

'नहीं हैं।'

शिवराज को उदास देख वह चुप हो गया। उसके चेहरे पर अभी

रेखें फूट रही थीं। गालों पर रेशम से रोएँ थे। आँखों में शरारत-भरी चपलता की चमक और ओठों पर निर्बाध होने की परछाईं। मोटर में पहली बार इस तरह बैठा था। अरमसराय में बाज़ार का दिन था। मवेशियों का बाज़ार। शिवराज को गाँव के एकाध लोग मिल गये और वह उतर कर चला गया।

'आना तो मिलना···वापस आओगे ?' सरनाम ने पूछा।

'पता नहीं···अच्छा ड्राइवर साहब नमस्ते।' और वह बाजार की भीड़ में खो गया। सरनाम उसे जाते हुए देखता रहा।

क्लीनर ने हैंडिल मारा और लारी आगे बढ़ गयी।

८

अपने पिता की मृत्यु के बाद शिवराज एक टीन का बक्सा लेकर वापस आश्रम लौट आया था। आश्रम में वह बदले हुए व्यवहार का अनुभव कर रहा था। यह आश्रम अब उसके लिये अनाथालय-सा हो गया। स्वामीजी की पुचकार और स्नेह चूक गया। अब घर से दान-दक्षिणा तो नहीं आती। पहली बार पिताजी दो बोरी गेहूँ, एक बोरी गुड़ पहुँचा गये थे। एकाध जोड़ा कपड़े बनवा गये थे, लेकिन यह सब अब कहाँ ? रात में बाहर चबूतरे पर लेटता तो आकाश का सूनापन देख कर रुलाई आती।

गाँव का खुला-खेला किशोर···अब आश्रम में दिन-भर काम करते-करते थक जाता। रात में स्वामीजी के पैर दबाने की 'ड्यूटी' उसी की थी।

एक रोज वह बाजार में निकल गया। पर जाये भी कहाँ, कोई पहचानता भी नहीं। बहुत देर इधर-उधर घूमता-फिरता रहा फिर

मोटर अड्डे की तरफ चला गया···सोचा, कुछ देर बैठकर लौट जायेगा। सरनाम सिंह को देखते ही उसे बल मिल गया। शतरंज की बिछी हुई बिसात पर सरनाम झुका हुआ था। उसने पास जाते हुए कहा, 'डिराइवर साहब, नमस्ते।'

सरनाम उसे देखकर अवाक् रह गया। कहाँ तीन महीने पहले का शिवराज और कहाँ यह। 'पिताजी नहीं रहे क्या?'

पीड़ा से भरी शिवराज की आँखें छलछला आयीं। सरनाम बिसात छोड़ कर उठ बैठा। शिवराज को लेकर छप्पर में चला गया। कुछ देर बाद एक बड़े ब्रह्मचारी के साथ शिवराज के दो-तीन साथी उसे खोजते हुए पहुँच गये। मोटरवालों के साथ शिवराज को बैठा देखकर उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं।

'अच्छा, यहाँ जमे हैं।' व्यंग्य से बड़े ब्रह्मचारी ने कहा, जिसमें सरनाम के लिए प्रकट अपमान का स्वर था। शिवराज एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गया। सरनाम ने ब्रह्मचारी जी को गहरी निगाहों से घूरा। तब तक ब्रह्मचारी जी फिर बोल पड़े—'यहाँ क्या हो रहा है?' क्षण-भर पहले के भयातुर शिवराज में अपना ग्रामीण स्वातन्त्र्य फूट पड़ा—'बैठे हैं।' सरनाम ने शान्ति की साँस ली और उसे साहस देने के लिए दृष्टि मिलायी।

'आश्रम चलो, स्वामीजी की आज्ञा है—जहाँ मिले, पकड़ लाओ। खोजते-खोजते परेशान हो गये···।'

'मैं नहीं जाऊँगा आश्रम···' सुनकर सरनामसिंह हंस पड़ा। ब्रह्मचारी कुंठित हो गये और अपने चेलों को भेड़ों की तरह हाँकते हुए बोले—'चलो···तुम लोग चलो। नहीं जायगा न जाय, चल के स्वामीजी से···।' और न जाने क्या-क्या बड़बड़ाते हुए वे चले गये।

उस रोज शिवराज सरनाम के संग ही रहा। लारी पर उसके साथ गया और दूसरे दिन साथ ही आकर उसके घर रुक गया। छोटी-सी बस्ती में बात फैल गई···सरनामसिंह ड्राइवर ने आश्रम के एक

लड़के को बरगला लिया। आश्रम छुड़वा दिया···।

'सरनामसिंह में यह गुन भी है ?'

'शराबी-कबाबियों में कौन से गुन नहीं होते ? फाँस लिया उस छोकरे को। बताओ, आश्रम का लड़का···ज़िन्दगी खराब करके छोड़ेगा।'

'वह रंगीले उसके पीछे बहुत दिनों से पड़ा था···।'

'जेबें कतरवायेगा···बाद में गिरोह में शामिल कर लेगा।'

'सुना, लड़का भी लफंगा है।'

'नहीं-नहीं, ब्राह्मण का बेटा है···।'

और तबसे शिवराज वापस आश्रम नहीं गया। कुछ दिनों सरनाम के घर के बाहर वाले कमरे में रहा, फिर उसके घर और जीवन का अंग बन गया। पर धर्म मंडली की कोप-दृष्टि सरनाम पर टिक गई। आध्यात्मिक जीवन जीने वाले धर्मपुरुषों ने बड़ा सांसारिक प्रचार किया, पर सरनाम अपने में मस्त था। जब कभी बात आती तो स्वामियों के कच्चे चिट्ठे खोलने लगता। इस प्रश्न को लेकर फक्कड़ों और पुजारियों में खाली अनबन और दुश्मनी हो गई। यह दुश्मनी पिछले चार सालों से चली आ रही थी।

६

सुबह शिवराज की आँखें खुलीं तो देखा सरनामसिंह उसी की चारपाई पर पड़ा है और उसका एक हाथ उसके सीने पर है । यह कोई नई बात नहीं थी । उसे अभ्यास हो जाना चाहिए था। चार साल गुजर गये इसी वातावरण में रहते । पहले बेहद उलझन होती थी···सरनामसिंह कहता—'तुम्हें देखकर मुझे अपनी जवानी याद आ जाती है···बस यही समझ लो, जो तुम आज हो, वही मैं सोलह साल पहले था । यही तेज़ी, यही तेवर और यही मासूमियत । तुम्हें देखकर अपने उन दिनों को याद कर लेता हूँ ।' ठण्डी साँस खींचकर वह कहता—'कहाँ अब लौट के आयेंगे गुज़रे हुए दिन ।' फिर उसका हाथ अपने हाथों में लेकर बड़ी हसरत से नाखूनों को देखता, पैरों को दबाता, बाँह पर एक उँगली फेर-फेरकर रोओं को कोमलता से छूता, फिर जैसे स्वप्न टूटने की तरह एकदम चौंक जाता, 'भाग जाओ मेरे सामने से ।'

कभी सरनाम उसे बदहवास की तरह बाँहों में दबोच लेता ।

उसके बालों में अपना मुँह गड़ाकर लम्बी साँसें खींचता। ठोड़ी उठाकर कहता—'मेरी तरफ देखो।' असहाय पक्षी की तरह शिवराज ताकने लगता और उसका शरीर पकड़ से छूटने के लिए कसमसाता। अपने को ढीला करते हुए सरनामसिंह कहता—'शिबू पिछले जन्म में तू मेरा कौन था ? एक दफा अम्मा को ऐसे ही पकड़ लिया, साँस फूल आई। गुस्से में एक तमाचा जड़ बैठीं। फिर प्यार करते-करते रो आईं...' और वह इस तरह खयालों में डूबता जैसे उसकी माँ उसे कहीं दिखाई पड़ रही हो।

शिवराज का एक क्षण पहले ग्लानि से भरा हुआ मन तरल हो आता। इसी तरह अपने सब बिछुड़े हुए साथी-संगियों की भाव-भंगिमाएँ रूप, हाव-भाव और चेष्टाएँ वह जब-तब शिवराज में देखा करता। कभी उसके बैठने में उसे अपने किसी साथी का साम्य दिखाई पड़ता, जिसे वह बहुत चाहता रहा था। या उसके पहन-ओढ़ लेने पर उसकी आँखों में अपने यौवन की तसवीर खिंच जाती, जिसे एक बार फिर महसूस करने के लिए वह शिवराज की दोनों बाँहें पकड़कर अपने सामने घुमा लेता। अपनी प्रत्येक चेष्टा का औचित्य या उससे सम्बन्धित भावानुभूति और उसकी पवित्रता का बोध वह शिवराज को अवश्य करा देता। इसके साथ ही सारी सुविधाएँ, शौक और फैशन की समस्त वस्तुएं उसके लिए उपलब्ध रहतीं। शिवराज को फलानी चीज की जरूरत है, यह मालूम भर हो जाय, दूसरे दिन वह चीज़ सामने होती।

और शिवराज इसी सोच में पड़ा रह जाता कि आखिर यह स्नेह या प्यार कैसा होता है, इसमें दुर्गन्ध क्यों आती है ? इसकी सीमा कहाँ तक है। किस बिन्दु के बाद यह सड़ने लगता है। वह कहाँ तक इसे स्वीकार करे, कौन-सी सीमा बना ले। यह सब रोज़ बनकर टूट-फूट जाता है।

धीरे-से हाथ खिसकाकर वह उठा और भीतर कमरे में चला गया। अभी उजाला अच्छी तरह फैला नहीं था। तीन दिन पहले की बातें उसे कुरेदने लगीं। सुबह उठकर उसका पहला काम यही होता था··· उन पत्रों को उलटना-पलटना जो हेम उसे भेजती थी। एक-एक पंक्ति को बार-बार पढ़ना और समझना। किताबों के पीछे से उसने हेम का पत्र निकाला, विशेषतः वे लाइनें···।

परम पूजनीय,

नमस्कार।

परचा आपका सन्नो से मिला। समाचार ज्ञात हुआ। आपने मुझे बहुत ही लज्जित और दुःखी किया, यह लिखकर कि 'मैं लोफर और आवारा हूँ।' प्राणधन अगर आप लोफर होते तो आपके पीछे इतने पुरुष न फिरते, अपनी लड़कियों के रिश्ते को। लोफर आप जानते नहीं कौन है, हरी, ओम, दयानाथ आदि ही लोफर हैं। प्राणधन, अब से कभी न लिखना, वरना न जाने हेम को इस बात से कितना दुःख पहुँचे। कल मैं और अम्मा मास्टर साहब के यहाँ गये थे। आप अपने कमरे में थे। मैंने देख लिया था, पर आपने नहीं देखा था। कल रात एक बड़ी वैसी बात हो गई···हाथ की मोमबत्ती गुलदस्ते में लग गई··· और वह पतंगा अपना प्रचंड रूप धारण कर मेरी सब आशाओं पर पानी फेर गया, आपका वह गुलाबी रूमाल वहीं रखा था, वह भी जल गया। उसे बचाने के लिए मैं हाथ से आग बुझाने लगी। हाथ में लपटें लग गईं, और धोती में आग लगने से बच गई। पर रूमाल नहीं बचा, अचानक मेरे मुंह से निकला···

क्या मिल गया भगवान् मेरे दिल को दुखा के।
अरमानों की नगरी में मेरी आग लगा के···
मत पत्रों से दिल तोड़ ओ जीवन बनाने वाले
क्यों तोड़ते हो दिल को ओ प्रेम बढ़ाने वाले।
तू (आप) दिल से मिलाता दिल के तार चलाचल

हेम के प्रेम के बन्धन में बना हार चला चल ।

तुम्हारी दासी···हेम ।

पैरों की आहट सुनकर शिवराज ने एकदम पर्चा मोड़कर किताबों के पीछे डाल दिया । वह बंसिरी के यहाँ जाने के लिए कपड़े भी पहन चुका था, सरनाम ने देखा तो कुढ़ गया—'सुबह हुई नहीं कि तुम्हारा पैर निकला । दो-चार घण्टा घर में भी बैठा करो···जानते नहीं हो किस तरह की औरत है ।'

हमेशा की तरह वह चुपचाप सुनता रहा । सरनाम ने कुछ डाँटते हुए कहा—'दूध पीकर जाना और लारी छूटने से पहले मेरा खाना भिजवा देना ।'

'मैं अभी होटल की तरफ नहीं जाऊँगा ।' शिवराज बोला और अपने बालों में लहरें बनाने लगा, जो हेम को बहुत पसन्द थीं । तभी बाहर से पुकारने की आवाज आई । पहचानकर सरनामसिंह ने भीतर बुला लिया । दोनों एक-दूसरे को देखकर आँखों-आँखों में मुस्कराये आने वाला मंगल था, बोला—'पुरी बँट गईं, मंगलवार का सिद्ध, सोम-वार को चाला···'

'कुर्राबाला पासी है ?'

'हाँ, दो और, सब कुशल ग्यारह' मंगल बोला ।

'कित्ते लैसन्स हैं गाँव में ।'

'दो जिनमें एक बाहर है ।'

बात सुनकर शिवराज अटककर काम करने लगा । जाने की जल्दी नहीं रह गई । तीसरे-चौथे महीने इस तरह की बातों की भनक उसके कान में पड़ती थी । वह सब जानता था । उनकी भाषा समझता था, लेकिन हर बार उसके कान खड़े हो जाते, पता नहीं इस बार क्या हो जाय ? कैसी बीते । सरनाम ने शिवराज को टरकाना चाहा—'अड्डे पर जाकर कह आओ, अभी-अभी आ रहा हूँ···बखत का ख्याल है, गाड़ी भर लें ।'

शिवराज अड्‌डेकी ओर चला गया।

'हथियार करारे किराये पर मिले हैं। इत्ता रुपया कहाँ था ? पेशगी की माँग थी, देना पड़ा।' मंगल ने कहा।

'सब हो जायेगा, इस बार चुनाव पर अपने लैसन्स लिए जाएँ जो लैसन्स दिलवायेगा सो वोट पायेगा।' सरनाम ने आगे की बात कही।

'एक बात है ठाकुर', काना-फूसी के अन्दाज़ में मंगल ने सरनाम से कहा, 'किसी तरह बनवारी धानुक को फँसवा दो, जब से एम. एल. ए. हुआ है, दिमाग नहीं मिलता, तीन सौ पर दी है इस बार···'

'क़िराये के कितने हथियार हैं ?'

'तीन, दो पुराने वालों के, एक दुनाली बनवारी धानुक की···'

'चलते वक्त वहीं छोड़ दो दुनाली, अपने आप फंस जायगा ससुरा ···फिर देख लिया जायगा आगे, पता लगते ही रपट करेगा कि मेरी लैसन्स की बन्दूक चोरी गई है, चक्कर में तो आ ही जायेगा।' सरनाम की इस बात पर सर हिलाते हुए मंगल ने बात दूसरी तरफ मोड़ दी ···बोतलें नहीं हैं, लौटने पर कम से कम दस का इन्तजाम करना।'

'ये साला चोरी-बट्टे का काम करते गुस्सा आता है, उस दिन साली रास्ते में फट गई, बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। हाँ, 'जरा नक्शा बताओ···' सरनाम ने जल्दी की।

मंगल ने समझाना शुरू किया—'भेदिया उसी गाँव का सुनार है। साल पीछे मुसम्मात का पचास तोला सोना खुद उसने गलाया है, चाँदी की इन्तिहा। नहीं सामने-सामने मकान पक्का है, भीतर सब कच्चा है। दड़ा फरलाँग भर की दूरी पर है, सीधा सड़क पर पहुँचाता है। दक्खिन ढाक का वन है। पश्चिम बस्ती है, पूरब में खेत और उत्तर तरफ मठिया। तीन तरफ से खुला है, घर में पाँच प्राणी हैं, तीन मर्द, दो बैयरबानी···पश्चिम बस्ती में दो लैसन्स हैं, एक गाँव के बाहर गया है, महीना-खाँड में आयेगा, एक से निबट लेंगे। सात गाँव बाद तहसील का थाना कचहरी है।'

'अच्छा ठीक है', सरनाम ने कहा, पर उसका दिल अनायास किन्हीं पुराने खयालों में डूब गया···सबसे पहली डकैती के कचहरी के वे दिन याद आते—जब मुकदमा सेशन सुपुर्द हुआ था और बंसिरी बयान देने आया करती थी। सात आदमी गिरफ्तार हो चुके थे, एक फरार था और सरनाम ने खुद अपने को जाकर अदालत के सामने पेश किया था। उसे यह कभी मँजूर न था कि वारन्ट से पकड़ा जाय और जेल में अपनी हड्डियाँ तुड़वाये। कबूल तो नहीं ही करना था। वह खुद कुछ दिनों फरार रहा था और मुकदमा शुरू होते ही उसने अपने को अदालत में पेश किया था।

बंसिरी उसे देखती रह गई थी। बाकी सब मुल्जिमों की पाँच-पाँच, चार-चार शनाख्तें थीं, मामला टेढ़ा होता जा रहा था, और फिर घर की औरतों की शनाख्तें, जिससे कोई बचता नहीं। बंसिरी की आँखों में बदले की जो परछाई थीं, उससे लगता था कि कोई बचत नहीं।

थानेदार ने अदालत में शनाख्त करवाई—'इस आदमी को पहचानती हो ?' बंसिरी से पूछा गया था और बंसिरी ने पैरों से सिर तक बड़ी गहरी नजरों से उसे ताका था, उसकी आँखें उसे भीतर तक भेद गई थीं···वह अच्छी तरह पहचानती थी, जैसे रोम-रोम से परिचित हो, सरनाम का शरीर थरथरा गया था और कमर से पसीने की धारें छूट पड़ी थीं, बंसिरी ने उसे अच्छी तरह देखकर थानेदार की तरफ निःसंकोच भाव से देखा था। इसे पहचानने में भूल कर जाऊँगी ?···इसी ने तो मेरी बाँह पकड़ी थी···भूत की तरह खूनी आँखों से मुझे देखा था और इसकी अँगुलियों की फौलादी पकड़ से मेरी बाँह पर पड़े हुए तीनों नील आज भी इसकी निशानी हैं। पर इसकी आँखों की वह आग आज नहीं है, वे फड़कते हुए नथने मुर्दा हैं···पर आदमी तो यही है। इसकी आवाज मेरे कानों में घुसी हुई है, जब ये अपने साथियों पर शेर की तरह गुर्राया था···इसे खूब पहचानती हूँ, अच्छी

तरह जानती हूँ।

'इसे पहचानती हो,' थानेदार ने सवाल दुहराया।

सरनाम ने माथे का पसीना पोंछने के बहाने मुँह ढक लिया था, कटघरे की बाढ़ से टेक ले ली थी, और बंसिरी ने कहा—"मैं इसे नहीं पहचानती।'

सुनकर उसका शरीर खोखला हो गया था। प्रतिहिंसा की शक्ति और दुश्मन को सामने देखकर आने वाले हिम्मत के उबाल पर ठण्डा छींटा पड़ गया था। उसके पैर और बुरी तरह से कांपे थे और वह बैठने के लिए लाचार हो गया था। खड़ा रहता तो गिर पड़ता।

१०

बड़ी बुरी डकैती थी वह जिसमें बंसिरी मिली थी। न जाने कौन-सी सायत से गये थे, भेदिया साथ में था। खड्डों में लारी चलाते-चलाते पसली-पसली हिल गई थी। एक मुकाम किया था, तेली के घर में। अंधेरिया रात, कब पानी बरस पड़े, इसका कोई ठिकाना नहीं। पखवारे पहले हथियार ठिये पर पहुँच गये थे। कुछ खेत में गड़े थे। शराब पी-पीकर कारतूसों की पेटियाँ डाल ली गई थीं और आनन-फ़ानन उस घर के सामने उतर पड़े थे। पहला फायर सरनाम ने किया था। लगा, जैसे किसी पहाड़ी घाटी में गोला दगा हो, गूंजता चला गया। देखते-देखते चार आदमी ऊपर छत पर थे। सरदार ऊँची छत पर खड़ा चारों तरफ से हिफाजत कर रहा था, तीन आदमी ऊपर से कूदे थे और दरवाजों के खुलते ही बाकी भीतर दाखिल हुए थे। ऊपर सरदार और नीचे खास दरवाजे पर सरनाम। भीतर कुहराम मचा। मुसम्मात का बड़ा बेटा एक लाठी की मार से चित हो गया

था, पर वाह री औरत। अँगुलियाँ तोड़ दी गईं, आग लगाने की धमकी दी गई, पर मुँह बन्द। एक अक्षर नहीं। 'मुँह में बन्दूक डाल दो··· नंगा कर दो हरामजादी को।' सरदार चीखा था। पर वह टस से मस नहीं। ऊपर का माल हाथ आ गया था···तब एक ने बाँह मरोड़ दी थी, पर उफ तक नहीं, बज्जर थी···बारह बरस के लड़के को उसकी आँखों के सामने गिरधारी ने सर तक उठाकर पक्के फर्श पर दे मारा, पर एक आह तक नहीं। सरदार ने कड़ककर कहा था—'आग लगाकर उसकी टाँग भून दो, जब तक चाबियाँ न दे, मरने मत दो ससुरी को?'

और आग की लपटें देखकर डरी हुई हिरनी की तरह बंसिरी निकल कर आयी थी····'मैं देती हूँ चाबी। मैं बताती हूँ···' इतना कहने के बाद जैसे वह सहम गयी थी और ज़बान पर ताले पड़ गये, आँखें फटी-फटी रह गई थीं। बुरी तरह डर गयी थी। सरनाम एक फायर करके भीतर घुस आया था। आग की लपट में चमकता हुआ बंसिरी का कुन्दन-सा तन···रस···सराबोर से एक आँच लगते ही जैसे रंध्रों से सुगन्धित रस रिस आयेगा, चिकनी खाल भी पके टमाटर की तरह फूट जायेगी। 'नम्बर तीन, तू बुढ़िया को तपा, मैं इस लौंडिया की खबर लेता हूँ। कहता हुआ गिरधारी बंसिरी की तरफ लपका था और उसकी छातियों पर हाथ डालकर वहशी तृप्ति का अनुभव करता हुआ अपने को कार्यरत प्रकट कर रहा था—'इस लौंडिया को सताओ, तब यह कबूलेगी···।' कहते हुए उसने उस अधेड़ औरत की तरफ देखा, पर गिरधारी की हिंस्र पाशविकता में कहीं एक बेहद कमज़ोर इन्सान उभर रहा था, जैसे किसी भौंकते हुए कुत्ते के सामने गोश्त का टुकड़ा आ गया हो। बंसिरी शिला की तरह खड़ी थी और गिरधारी उसे परेशान करने के बहाने उसके गाढ़े स्पर्श के लिए ललकता जा रहा था। बाल खींचकर उसने बंसिरी का मुँह ऊपर कर लिया था। 'नायक!' सरनाम की आवाज गिरधारी के कानों में पड़ी, पर उस पर एक दूसरा ही खुमार था। एक भद्दी

गाली देते हुए गिरधारी चीखा—'माल नहीं बताती तो इस लौंडिया को मोटर में डाल लो···'

सरनाम उछलकर पास पहुँचा था, बंसिरी बुरी तरह चीखी थी। उसकी बाँह को फौलादी पंजों से जकड़ कर सरनाम ने अपनी ओर खींच लिया और गिरधारी पर बरस पड़ा था—'बेधर्मी नहीं होगी गिरधारी···जाओ सन्दूक सँभालो।' गिरधारी देखता रह गया और सरनाम बंसिरी को अपने पास बाहर की चौखट तक घसीट लाया और उसे एक कोने में डालकर मुहाने पर तैनात हो गया। उसे नहीं पता, वह कब अचेत हो गई। क्योंकि पश्चिम बस्ती से शोर उमड़ता हुआ उधर ही आ रहा था···।

एकाएक एक धड़ाके के साथ ऊपर खड़े सरदार की लाश नीचे आ गिरी थी···सीने पर पड़ी कारतूसों की पेटी के सारे कारतूस फूटकर छाती में घुस गये थे···फौज से छुट्टी आये गाँव के किसी सिपाही ने अचूक निशाना साधा था। गोली सीने पर लगी थी और सरदार का बदन छारछार हो गया था। बस्ती की तरफ से दो बन्दूकें लगातार फायर कर रही थीं, और उस अन्धेरे में सैकड़ों आदमियों का शोर नजदीक आती रेलगाड़ी-सा निरन्तर बढ़ता जा रहा था। आखिर संकट सामने आया। डकैतों ने बराबर गोलियाँ दागीं, पर बचाव नहीं था। सरदार की लाश ठिकाने लगानी थी। गाँव वालों ने तीन तरफ से चकिया-सी डाल दी और चौथा रास्ता था तालाब का। हारकर बचे हुए लोग सरदार की लाश के साथ तालाब में कूद पड़े थे और गिरते-पड़ते किसी तरह भाग खड़े हुए थे। भेदिया को वहीं गोली मार दी···दो बन्दूकों का नुकसान हुआ और एक आदमी मारा गया···गिरधारी कुनजर न डालता तो कुछ न होता। 'धरमशील के हौसले से काम होते हैं चोर-लफंगे नहीं हैं हम।' उस दिन से गोल ढीला पड़ गया। सरनाम ने गिरधारी के साथ शिरकत करना बन्द कर दिया और सरदार मारा जा चुका था।

दूसरे दिन डकैती की रपट हुई और पुलिस ने नाम रख-रखकर वारंट जारी कर दिये। वह इधर-उधर बचता-छिपता रहा, फिर उसने खुद को अदालत के सुपुर्द कर दिया था। वकील की यही राय थी।

मुकदमा चला, बंसिरी रोज हाजिर होती, इजलास शुरू होते ही कैदी जेल से लाये जाते, बैठकर मिसकौट होती। गिरधारी कहता—'सब गुड़ गोबर कर दिया तूने सरनाम। गर्दन फँसी और कौड़ी हाथ न आयी···। हजार रुपए की तो अकेली लौंडिया है···मटर की तरह भरी हुई!' इजलास से बाहर पेड़ों और वकीलों के तख्तों के आस-पास मजमा इकट्ठा रहता। सरनाम उसे रोज़ देखता पर बंसिरी की आँखों में कोई भी ऐसी बात न दिखाई पड़ती जिससे वह अपने लिए कुछ मतलब निकाले और वह सोचता—बंसिरी, तेरी मेहरबानी मेरे किस काम आयेगी? डकैती साबित हुई तो तेरे शिनाख्त न करने पर भी सात साल की सजा नहीं बचती। तेरी यह मेहर किस लिए थी मुझ पर।

रोज़ाना की एक दुश्मनी भरी मुलाकात, गिरधारी दाँत किटकिटा कर कहता—'शहर जाते हो तुम तो, सराय या धर्मशाले में टिकी होगी, कितनी देर लगती है···' कहते हुए वह चुटकी बजाता और उसके मुख के भाव इस तरह बदलते कि सरनाम का दिल कुढ़ने लगता, क्योंकि गिरधारी जानता है कि उस लड़की ने जान-बूझकर सरनाम की शिनाख्त नहीं की, तब उसे चुप रहना चाहिए···उसे समझना चाहिये कि वह सरनाम और बंसिरी का अपना मामला है। न जाने क्यों बंसिरी सरनाम से आँख न मिलाकर उसके माथे पर पड़े हुए घाव के निशान को ताकती थी, इसे सरनाम ने भी महसूस किया था। पर बात नहीं हुई। जो कुछ होती वह अदालत में···बस।

फैसले वाले दिन डकैतों ने, जब भरी हुई इजलास में नारे लगाये 'बोल सच्चे दरबार की जै' तो लोगों ने समझ लिया कि डकैती छूट गई। बंसिरी के साथ वाले पैरवीकारों के मुँह पर लानत बरस रही

थी, लेकिन बंसिरी स्वयं निरपेक्ष थी। वे लोग बैल-गाड़ियों में बैठकर उसी दिन अपने गाँव लौट गये। एक नाटक खत्म हो गया था। पर सरनाम के दिल में बंसिरी की अजीब-सी अनुभूति थी---एक सतायी हुई दयावान नारी की। एक नासमझ लड़की की। एक हारे हुए दुश्मन की, एक जीते हुए साथी की वह कुछ भी ठीक-ठीक न सोच पाता।

११

फिर एकाएक कई सालों का व्यवधान है। उसे लगता कि न जाने कितने व्यवधान उसके जीवन में हैं, जिन्होंने उसकी ज़िन्दगी के रूप को निश्चित किया है। कहाँ-से-कहाँ आ लगी वह ? ज़िन्दगी के बनते हुए रूप को अस्वीकार करके वह भरी जवानी में फौज में चला गया था, हिन्दुस्तान से बाहर जाना नहीं हुआ, पर कौन-सी ऐसी सड़क है, जिस पर उसकी मिलिटरी ट्रक के जूं-जूं करते हुए टायर नहीं गुज़रे। आसाम से रावलपिंडी, रावलपिंडी से पूना, पूना से मद्रास, और फिर इम्फाल। दो वर्ष की इस तूफानी ज़िन्दगी के बाद वह यहाँ आया था, पर प्राइवेट मोटरों की ड्राइवरी में वह निःशंक तूफानी रवानी कहाँ थी, वह उत्तेजना कहाँ थी···मौत से टक्कर लेने की तलवार कहाँ थी···और तब उसने अपने को इन लोगों के साथ पाया था···और इन लोगों के साथ में एकाएक बंसिरी को पाया था। उसे देखकर उसकी पशुता अचानक मर गयी थी, अद्भुत

प्रभाव था उसमें।

और जब उसका चेहरा-मोहरा सरनाम के खयालों से उतर रहा था कि उसे एक भयानक धक्का लगा। दो साल बाद सौरों के मेले में ताड़ी पीकर वह एक नौटंकी में घुस गया था। उसे शक हुआ—लैला की सखियों में बंसिरी थी। सीधी-सादी लड़की कूल्हे मटकाना सीख गयी थी। आँख मारती थी।···'उई दइया!' कहकर लजाती थी और खुले हुए गंदे मजाक करती थी। सरनाम ने गिलट का एक रुपया स्टेज पर फेंका था, पर नगाड़ों की किड़िम-धिन्न किड़िम-धिन्न में वह बेकार चला गया। उसे लगा, वह बंसिरी नहीं है। देखने वालों के इशारों का जवाब वह अपना पार्ट करते-करते दे रही थी। उसकी निगाह हमेशा सरनाम पर फिसल जाती। पर उसका जी नहीं माना।

रात दो बजे जब नौटंकी खत्म हुई, तो वह नटों के डेरों के इर्द-गिर्द घूमता रहा। सचमुच अब बंसिरी उसके लायक हुई है, तब तो वह इतनी पाक लगती थी कि अपने पर शरम आती थी। पाँच नट-नियाँ दो तम्बुओं में थीं। नट उन्हीं की अगल-बगल थे। एक नट ने कुछ कहा था तो बंसिरी एकदम बिफर उठी थी—'जा जा···अपने तबेले में सो, इधर रुख किया तो जान सलामत नहीं।'

'नयी है, ढर्रे पर आयेगी···' दूसरे ने पहले नट को तसल्ली से काम लेने की हिदायत दी थी, और एक गंदा इशारा करता हुआ बड़े भद्दे ढंग से बैठ गया था।

सरनाम लौट आया था। सुबह तक तीन-चार घन्टे बड़ी पेशोपेश में गुजरे थे। दूसरे दिन उजियारा होते ही वह उधर गया, पर नटों के डेरों में जगहर नहीं हुई थी। एक रोज मेले में नौटंकी शुरू होने से पहले बंसिरी मिली थी। देखते ही बोली, 'डाका मारना है?' सरनाम हँस दिया। बोला—'अब तेरे यहाँ क्या रह गया?' और उसने बेहद गहरी नज़रों से बंसिरी को ताका था।

'तेरे लायक सब कुछ है। है दम?' बंसिरी ने कहा और खिल-

खिला पड़ी···पान से रंगे दाँत सरनाम को भा गये। कितनी मुंहफट हो गयी है। हया-शरम खोकर औरत बनी है अब।

'चल के देख, चलेगी।' सरनाम ने कहा, तब तक उसके साथ वाली नटनी ने मनिहार से लड़ाई शुरू कर दी और बंसिरी उसमें उलझ गयी। सरनाम कुछ देर देखता रहा, शायद उधर से फुर्सत पाकर वह फिर इधर मुंह मोड़े, पर वह झगड़ा निबटा कर हंसती-हंसती दूसरी दुकान की तरफ बढ़ गयी। सरनाम को खल गया। रात नौटंकी में वह फिर गया और सबसे आगे जाकर नगाड़े वालों के पास उसने जगह खोज ली। बंसिरी बंदरियों की तरह नाचती-कूदती रही···और सरनाम का पौरुष उबाल खाकर सिराता रहा। पर वह जानता था, अब यह हाथ नहीं आने की। पर्दा गिरते-गिरते बंसिरी उससे कहती गयी—'बाहर रुके रहना।'

भीड़ छंटते ही वह आयी और उसे लेकर देवियों की मठिया की ओर इमलियों के नीचे चली गयी, यह रथों का बाजार था—रथ, लहडू, रब्बा···।

'कहाँ है आजकल···कुछ काम-धंधा ?' बंसिरी ने पूछा।

'वहीं हूँ···मोटर लेके आया था, मेले की दुकानें ढो रहा हूँ। कैसे आ गयीं यहाँ···?'

बंसिरी ने ऐसे देखा, जैसे यह सब तेरा किया ही तो है, और उसकी आँखें डबडबा आयीं। बोली—'बस आ गयी···तू निठल्ला है, समझता है सब इसी तरह रह लेते हैं। कितनी डकैतियाँ मारीं। हमारी नौटंकों की बाँस-बल्ली व छकड़े ढोयेगा ?' बंसिरी इस तरह बात कर रही थी, जैसे वह निपट नादान बच्चा हो। सरनाम को लगा, निकटता जता रही है। उसने कंधे पर हाथ रख लिया, बंसिरी कुछ नहीं बोली।

सरनाम उसे उत्तर वाले भूड़ मैदान की ओर ले आया, जहाँ लदाई के लिये और ट्रकों के साथ उसका ट्रक खड़ा था। उन दिनों रंगीले उसके साथ क्लीनर था। वह ताड़ी पिये, ट्रक के खुरदरे फर्श पर नंगे

बदन लेटा था। सरनाम ने सीट की गद्दी निकाली और जहाँ ट्रक की परछाईं से अँधेरा और भी घनीभूत था, बिछाकर खुद बैठ गया, हाथ पकड़ कर बंसिरी को भी बैठा लिया।

'पौडर लाली लगाकर पटरों पर कूदते-कूदते हाड़ टूट जाते हैं, नगाड़े से कान के पर्दे फट जाते हैं···पर लैला बन के रहूँगी एक दिन बंसिरी बोली।

'लैला!' सरनाम ने हाथ दबा कर पूछा।

'हाँ, रियाज़ की बात है। सत्तार तो कहता था, इसे ही स्टेज पर लैला बना कर उतारो, पर मास्टर नहीं माने···।'

'कौन सत्तार?'

'अरे, वही जो मजनू बनता है। असल में मास्टर की श्यामा से आशनाई है। जो वह कहती है वही होता है। सत्तार का मुँह नोच लिया कलमुँही ने···पर कित्ते दिन!' पौडर लगाती है, तब भी लकीरें नहीं जातीं···लैला तो जवान थी।' बंसिरी ने कहा। उसकी आँखें अँधेरे में भी लौ की तरह चमक उठी थीं। गर्वीली-गहरी साँस उसने खींची थी।

सरनाम ने उसे अधलेटा कर लिया था। मेले का शोर खामोश हो चुका था। टूरिंग सिनेमा का भोंपू बहुत पहले बन्द हो गया था। सर्कस वालों का तम्बू पिचके गुब्बारे की तरह ढीला पड़कर जमीन पर लोट रहा था। दूर, जहाँ खास मेला था, वहाँ दुकानों के आगे पर्दे तन गये थे, जिनके पीछे से टिमटिमाती हुई लालटेनों का मटमैला प्रकाश छन रहा था। चरख चुप थे। मेला-अफसरों के तम्बुओं की गैस की रोशनी में एकाध अरदली चिलमें फूंकते नज़र आ रहे थे। दो-चार इधर-उधर थके-से आते-जाते, पर भूड़ मैदान में टिके हुए सारे क्लीनर और ड्राइवर नशे में धुत थे। सरनाम ने एक नज़र चारों ओर डाली···उसके सामने फौजी पड़ाव घूम गये। युद्ध से लौटे थके-हारे जवान और उनकी एकाकी बस्ती···किसी घाटी की कोख में या

किसी नदी के किनारे खड़े हुए खेमे और उनमें सोते हुए थके, पर भूखे इन्सान। 'गद्दी तो इतनी पतली है, तुझसे सीधी तरह बैठा भी नहीं जाता—' बंसिरी कह रही थी कि उसका कंधा गद्दी के नीचे आ रहा था। बोली—'यह भी नहीं देखता, इधर काँटे हैं···खाल छिल गयी। हट, अरे हट···।'

और बंसिरी जब गयी, तब उसके सचमुच एक कांटा ऐसा चुभ गया था, जो न उस अँधेरे में दीखता था और न टटोलकर बाहर ही खींचा जा सकता था। उसके थके हुए शरीर में कुछ ऐसी सनसनाहट भर गयी थी, जो उसे आपे से बाहर किये दे रही थी। इतनी टूटन, थकन और हारी हुई झनझनाहट। सरनाम ने उसे मरोड़ दिया था। माँस कसकता था··· कितनी गहरी नींद आती है ऐसे में। चैन और भुलावे की नींद, बेफिक्री की नींद, मजबूरी की नींद।

'राउटी तक पहुँचा आऊँ···?' सरनाम ने पूछा था।

'चली जाऊँगी, तू सो।' उसने कहा और निश्चिन्त-सी उठकर चली गयी। किसी दूसरे मोटर के क्लीनर ने टोका, तो गुर्राती हुई निकल गयी। सरनाम उसकी छाया को देखता रहा, एक मोटर इंजिन की बगल से मुड़कर वह ओझल हो गयी।

मेला उठते-उठते यह तै हुआ था कि जिस दिन नौटंकी यहाँ से उखड़ेगी, बंसिरी सरनाम के साथ चलेगी। नौटंकी के मालिक से पूछने या कुछ कहने की जरूरत नहीं। मेला उखड़ते ही सरनाम लकड़ी वालों की खेपें ढोने लगा। जिस दिन वह खाली मोटर लेकर आने वाला था, नहीं आया। बंसिरी इन्तजार करती रही। रंगीले की थोड़ी-सी असावधानी के कारण ठर्रे की बोतलें पकड़ी गयीं और दोनों बन्द हो गये थे। ज़मानत देर से हुई, वह सीधा सोरों के मेले में पहुँचा। पर अब वहाँ कुछ भी नहीं था। नौटंकी की बल्लियों के गहरे-गहरे गड्ढे अब भी उस जमीन पर मौजूद थे, दस-बीस फटे हुए बाँस पड़े थे···। बस, और कुछ नहीं। धरती की छाती में बने हुए वे गहरे

गड्ढे वहदेखता रहा, जिनके मुहानों पर मकड़ियों ने जाला भी पूर लिया था···जब तक सूरज तपेगा तब तक ये गड्ढे ऐसे हो बने रहेंगे। शायद तपन से दरक कर एक-आध पर्त उचट जाय···बरसात में पानी सोख कर धरती के ये घाव पुर जाते हैं···भूमि नयी-नवेली हो जाती है, जैसे यहाँ कुछ था ही नहीं, पर निशान मिट जाता है, तब तक के लिए, जब तक कि दुबारा फिर मेला नहीं जुड़ता।

पर बंसिरी की आहट के लिए उसके कान हमेशा खड़े रहते··· जिले का कोई मेला उसने नहीं छोड़ा। हर नौटंकी और रास मंडली में उसने रातें गुजारीं, पर वह नहीं मिली। मास्टर की नौटंकी भी दिखायी पड़ी, मालूम हुआ वह सत्तार के साथ किसी सर्कस में चली गई। कुछ दिन पहले सर्कस के काफी जानवर किसी बीमारी से मर गये, इसलिए सब तितिर-बितिर हो गया। अब पता नहीं कहाँ है। सरनाम माल ढोने वाली फारवर्डिंग कम्पनी से नौकरी छोड़कर सवारी वाली लारियों की कम्पनी में आ गया था। पूंछ की तरह रंगीले साथ था। मसखरा आदमी। सरनाम के रौब-दाब के कारण उसकी भी निभ जाती थी। अपने पेटभर को वह कमा ही लेता था।

१२

और रंगीले।

बड़ा रँगा हुआ आदमी था। इस बस्ती में रँगीले का बचपन किसी ने नहीं देखा। चौड़ी काठी पर सिलबिल दिमाग। इस आदमी की शोहरत सबसे पहले टूरिंग सिनेमा के आस-पास फिल्मी गाने की किताबें बेचने वाले और पोस्टर उठाकर चलने वालों के बीच फैली थी। बात ही ऐसी थी। कोई खेल ऐसा न जाता, जिसे रंगीले न देखे। चाहे अछूत कन्या, कंगन या बन्धन हो, चाहे हण्टर वाली या गुलबकावली। गाना गाने का नहीं, सुनने का शौक था। देविकारानी ही नहीं, लीला चिटनिस का जमाना भी लद चुका था और बेस्ट टूरिंग टाकीज के रुपहले पर्दे पर उन दिनों सुरैया चमक रही थी। शहर में सुरैया की शोहरत के साथ-साथ रंगीले का नाम भी उजागर हुआ। अभी तक रंगीले बस्ती के हर आदमी के काम आता रहा था। अपने में मस्त होकर फक्कड़पन से जीता था, न किसी से लड़ना न झगड़ना।

आवारा कहे जाने वाले लोगों के साथ उठता-बैठता जरूर था, पर उनकी बदमाशियों से दूर, इसी लिए उसकी सबसे दोस्ती थी। दुश्मनी और रंगीले से, यह कोई सोच ही नहीं सकता था।

लेकिन एक रोज लोगों को यह जानकर ताज्जुब हुआ कि रंगीले किसी का जानी दुश्मन हो गया है और हर वक्त एक ही रट लगाये रहता है। 'जिन्दगी में किसी से दुश्मनी नहीं की, पर ये देवानन्द जब जीता है और जब तक मैं जीऊँगा, तब तक यह दुश्मनी इसी जोर-शोर से चालू रहेगी। बेईमान।' यह गाली देकर वह जमीन पर बड़ी हिकारत से थूक देता था।

इस दुश्मनी का राज़ एक दिन खुला। रंगीले की जेब में सुरैया की तसवीर थी और जूते में फिल्म मास्टर देवानन्द की। क्योंकि रंगीले को फिल्मी गीतों की किताब बेचने वाले ने बताया था कि देवानन्द और सुरैया का प्रेम इस हद तक पहुँच गया है कि देवानन्द उससे शादी करने की सोच रहा है। यह खबर रंगीले को गोली की तरह लगी। उसके सपनों की रानी को कोई और इस निगाह से देखे। पर्दे पर सुरैया का गीत सुनकर जब उसके अगल-बगल बैठे लोग पैसे खनकाते तो उसकी त्योरियाँ चढ़ जातीं···'जरा भी तमीज नहीं इन लोगों को, शोहदे।'

रंगीले की अपनी अलग महफिल थी, सुबह वह मोटर अड्डे पर रहता, दोपहर में कचहरियों में दौड़ता और शाम को सराय के गलियारे में कलिया पराँठे वालों की दुकान पर बैठता, क्योंकि उसके साथ वाले अधिकतर वहीं खाना खाते थे। मिशन स्कूल के पास लगा बाइस्कोप जब आवाज देता···'आइये, आइये···रामराज, जिसमें परेम

अदीब, शोभना समरथ जैसे नामी सितारों ने काम किया है। खेल शुरू होने जा रहा है···भगवान का दरसन कीजिए।' तब रंगीले अपने संगी-साथियों के साथ उठकर सिनेमा घर पर पहुँचता, आधी रात वहीं बीत जाती।

बड़ा लोकप्रिय था रंगीले। लोगों में भी और पुलिस महकमे में भी। वह अधिक पढ़ा-लिखा तो नहीं था फिर भी हाजिर जवाबी में पढ़े-लिखों के कान कतरता था। सबसे बड़ी वजह थी उसका रुसूख। महकमा पुलिस का वह बँधा हुआ गवाह था। वैसे भी यह उसका पेशा था···पुलिस को किसी भी मामले में गवाह की जरूरत पड़ती, तो रंगीले को हाजिर कर दिया जाता। क्या मजाल कि दूसरे पक्ष का वकील एक भी फालतू बात उसके मुँह से निकलवा ले, या गलत कहलवा ले। दीवान जी से वह पूरा मामला समझ कर यह जान लेता था कि उसकी गवाही किस पहलू के लिए है, फिर तो ऐसे बोलता, जैसे सारा वाकया उसकी नजरों के सामने हुआ हो।

किसी के घर चोरी हो जाय, किन्हीं दो में फौजदारी हो जाय, और चश्मदीद गवाह की जरूरत पड़े तो रँगीले की माँग बढ़ जाती थी। जो पहले आ जाता, वह उसे रिजर्व कर लेता। चौथाई पैसा पेशगी, कचहरी तक का भाड़ा। आधा पैसा गवाही के वक्त और बाकी काम खतम होने पर। कभी-कभी इस काम के लिए वह दूसरी तहसीलों में जाता। खास जरूरत पड़ने पर जिला पार भी चला जाता और रंगीले सरकार को दुआ दिया करता था···बड़ी उमर हो इस सरकार की, हाकिम को टिकने नहीं देती।' हाकिमों के तबादलों के साथ उसके रोजगार में नई जान आती थी, दीवानी कचहरी से लेकर लेबर-आफिस तक के इजलास उसके घूमे हुए थे। कौन-सी ऐसी अदालत थी जिसमें उसने गंगाजली उठाकर कसम न खाई हो।

वह कहा करता था···'मैं तो पैसे का गुलाम हूँ, और भाई, सबसे बड़ा अपनापा···आदमी-आदमी के काम आता है। मुझसे किसी का

काम निकल जाय, समझो सुरंग की एक सीढ़ी चढ़ी। बद्दुआ नहीं लेता···दुआ लेता हूँ, दुआ देता हूँ।'

पुलिस वालों से जान-पहचान के कारण रंगीले निर्भय होकर घूमता था। कोई ऐसी चौकी नहीं, जिसके दीवानजी की किसी मुसीबत में, रंगीले ने हाथ न बँटाया हो। सरनाम यह बात जानता था, इसीलिए उसने रंगीले का साथ पकड़ा था, लेकिन उसी पर एहसान करके।

१३

उन दिनों एक जज बहुत दिनों तक टिक गया। रंगीले की साख बिगड़ गई। जब फैसले में जज ने लिखा कि रंगीले वल्द जोगनराम पेशेवर गवाह मालूम पड़ता है, क्योंकि मेरी इजलास में पेश हुए पिछले दो मुकदमों में यह गवाह बनकर हाजिर हुआ। और उन्होंने जुबानी रंगीले से कहा था…'अगली बार तुम्हें गवाह की तरह न देखूं। या अपना मुकदमा लड़ने आना या चोरी-चमारी के जुर्म में हाजिर होना।'

जब तक वह हाकिम रहा, किसी ने भी रंगीले को न पूछा। उन दिनों वह नौकरी भी छोड़ चुका था, इसलिए हाथ एकाएक तंग हो गया। पर फक्कड़ आदमी…उसके चेहरे पर शिकन दिखाई न दी। कुछ ऐसे काम करने लगा, जो कोई न कर पाये…जैसे महूक तोड़ना, कुएँ में गिरी हुई डोल-बालटी निकाल देना, साँप पकड़ना आदि। बेकारी के समय में चौराहे वाले शिव मन्दिर के बाबा लोगों के साथ बैठा करता, गांजों की दम लगाता और पीनक में पड़ा रहता। उसकी

ख़ामोशी से चौराहा, सराय और अड्डे सूने लगते थे।

इन दिनों की तीन-चार ही नहीं, सैकड़ों ऐसी बातें हैं जिन्हें रंगीले ने जन्म दिया। इस पतली और अंधेरी गलियों वाले शहर की सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं में उसका प्रभावशाली हाथ रहा है। यहाँ के लोग सचमुच उसके ऋणी हैं जो लोग बाहर से पढ़-लिख कर आते, वे अपने आप यहाँ के जीवित, स्रोत से कट जाते···पर इन बेपढ़े जिन्दा-दिल लोगों को पीढ़ियाँ कभी नहीं मिटीं, ऐसी पीढ़ियाँ, जो हमेशा अतीत की गरिमा और वर्तमान की आवश्यकता पर जीती रहीं। आगे उन्होंने कुछ नहीं देखा, देखना सीखा ही नहीं। शायद इसीलिए मानवता के इस खण्ड का आधा मुंह काला था, आधा सफेद। टुच्चे काम करके भी बड़े काम करने का हौसला रखने वाले। शाम को नृशंस की तरह गोद-गोद कर हत्या करने वाले और सुबह किसी अपरिचित की प्राण रक्षा में स्वयं जाने वाले। रात में वेश्याओं की गलियों में दंगा-मारपीट करके सुबह गहरी निष्ठा से भरे हुए देवी मन्दिर पर शीश नवाने वाले अद्भुत लोगों की बस्ती है यह। बड़ी-बड़ी नैतिकताओं को खण्ड-खण्ड कर छोटी-छोटी नैतिकताओं के लिए जागृत रहने वाले। और रंगीले वह हमेशा बच्चों की तरह वर्तमान में जीता था, पश्चात्ताप और परिताप से दूर।

उन दिनों रंगीले बड़े कष्ट में था। शिवमन्दिर के बाबा लोगों से उसका झगड़ा हो गया था। मंडी में जाकर पल्लेदारी करना उसे मंजूर न था।

उन्हीं दिनों सरनामसिंह सवारियाँ ढोने वाली एक लारी पर आ गया था। कुछ दिन पहले रंगीले भी उसके साथ क्लीनर रहा था पर

जब सरनाम ने दूसरी जगह नौकरी की, तो वह अपने पुराने धंधे में लगा, यानी बेकार हो गया।

उन दिनों लड़ाई वाले राशनिंग का ज़माना था। कारबार बुरी तरह चौपट हो चुके थे। कड़ी से कड़ी रीढ़ वाला भी झुक गया था। जिसे देखो, वह काम-धन्धे और रोजी की तलाश में दूसरे शहरों की ओर भाग रहा था।

सरनाम को रंगीले की फिक्र भी थी, आड़े वक्त काम आने की बात थी। जोड़-तोड़ लगा कर उसने अपनी लारी के क्लीनर को भगा दिया। रंगीले की तलाश में मठिया पर गया, पर वह नहीं मिला। सराय गया, वहाँ पता चला कि अभी-अभी उसका दिमाग चल गया था···अपनी रमक में था। अफ़सरों के घर की कुछ औरतें वापस डाक बगले की तरफ जा रही थीं, वह बैठा उनकी चाल-ढाल और सिंगार-पटार पर फबतियाँ कसता रहा। फिर सराय के कोने पर से कोरी का गधा खोल लाया और उसकी पूँछ में टूटा हुआ डोल बाँधकर उसने उन लोगों के पीछे दौड़ा दिया। हँगामा मच गया, ऊँची एड़ी की सेंडिल पहने एक अफसरानी के पैर में मोच आ गई। अचानक गधे से बचने के लिये जब वे संकरी सड़क पर घबराई सी चीखी-चिल्लाई, तो रंगीले वहशियों की तरह ताली पीट-पीट कर हँसा, एकाध गंदे मजाक उसने किये, और सिनेमा की तरफ भाग गया।

सरनाम उसकी हालत समझ रहा था। जब वह उसके साथ था, तब उसने उसे पास से देखा था···औरों की तरह वह भी बुरी तरह भूखा था। हर तरफ से भूखा···मन से, तन से, जेब से। इसीलिए औरतों के प्रति उसके व्यवहार में यह तिक्तता थी, अमीरों के प्रति घृणा थी और अपने पुरुखों के प्रति क्रोध। बनी-ठनी औरतें देखते ही उसका दिमाग कीली पर से उतर जाता था, कोई ऐसी हरकत कर बैठता, जिससे उसके मन को जंगली तृप्ति मिलती, उन्हें परेशानी में पड़ा देखकर वह दाँत निकाल कर ठट्ठा लगाता। जानवरों के जोड़ों

को परेशान करता। बिल्लियों और कबूतर आदि पकड़कर उनके अंगों का निरीक्षण करता। जाते हुए साँड को किसी गाय पर हुलकार देता और चौराहे पर जब कभी गाँव की बेड़नियाँ आ जातीं, तो वह बीच बाजार दिन-भर हुरदंग मचाता···यह जाहिर करता कि वह पिये हुए है, उन्हें छेड़ता, मजाक करता। तमाखू लाकर खिलाता, पानी पिलाता और उनके साथ ऐसा घुल-मिल जाता, जैसे उसी मंडली का सदस्य हो। रात-रात भर सूनी गलियाँ उसके कदमों की आहट और बेसुरे गानों से गूंजती रहतीं। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं था, जिससे बस्ती के लोग उससे डरते···बस्ती वालों के लिए वह विषहीन सांप था।

१४

इन्हीं दिनों शहर में एक अनोखे संघर्ष ने जन्म लिया।

सन् बयालीस में कुछ खास तरह के लोग यहाँ आये थे। उनकी वजह से शहर के नौजवानों में तरह-तरह की बातें फैली थीं···कई निशान चालू हुए थे···तिरंगा पहले भी था, पर इस बार जोर पकड़ा था हँसिया-हथौड़े वालों ने और उनकी आये दिन हाथा-पाई होती रहती थी। बस्ती में नारे गूंजते रहते। तरह-तरह की टोपियां दिखाई पड़तीं, स्कूलों के लड़के गोल बाँधकरस ड़क और गलियों का चक्कर लगाते रहते। गाँधी बाबा की जै के नारे लगते। इन दिनों बड़ी सरगरमी थी। सरेशाम दुकानें बन्द हो जातीं···।

पनवाड़ी रमेसुर इस सरगर्मी का कारण समझता था···'विक्टोरिया महारानी के मंत्री लोग बेइमान हो गये, गाँधी बाबा ने ऐलान करवाया है कि राज अब हमको देके देखो, हम चलायेंगे।'

रंगीले जो बातें सुन रहा था, बोला, 'सुभाषचन्द्र बोस का इन्त-

जार करो···उन्हीं के साथ दिल्ली जायेंगे उन्हें कोई रोक नहीं सकता बड़े महात्मा हैं, अंग्रेज फौज लेके लड़ने गये,तो अन्तर्धान हो गये और मय अपनी फौज-फाटे के आसाम में उतरे। उनके लिए कोई मुश्किल नहीं हो सकता है कल यहाँ दिखायी पड़े···बराबर दिल्ली की तरफ बढ़ रहे हैं।'

'बंगाल का जादू उनकी मुट्ठी में है। जो भी उनका सामना करने जाता है, वह बकरी-बकरा होके लौटता है···' जानू ने मार्के की बात बतायी, फिर धीरे से कहा, 'आज रात सब लोग जमा हो रहे हैं, तैयारी होने का हुक्म मिलेगा, पता नहीं कब दिल्ली चलना पड़े···।'

और रात की मीटिंग के इकरारनामों के मानहत सब से अधिक काम रंगीले ने किया था। दिन-दहाड़े उसने डाकघर में दस-पन्द्रह साथियों के साथ आग लगा दी। डाकघर के बाबू खड़े तमाशा देखते रहे। उन दिनों रंगीले 'नेता जी' हो गये थे। एक ही नारा उसकी जुबान पर था···'अपने देश में अपना राज!'

जगह-जगह जाकर उसने आग भड़काई थी। कचहरी पर छापा मारने वालों के दल में शामिल हुआ था। स्कूलों में हड़ताल करवाने के लिए वह आगे-आगे झण्डा लेकर गया था। खिड़कियों और दरवाजों पर पत्थर बरसाये थे। लड़कों को जबरदस्ती बाहर खींच लाया था ···यहाँ तक कि अकेले उसने एक आन्दोलन खड़ा कर लिया, पर किसी पार्टी ने उसे अपने साथ नहीं लिया, पता नहीं कल क्या कर बैठे? धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ हो रही थीं। पर रंगीले, सिंह की तरह बस्ती की गलियों में घूमता। जगह-जगह सुभाष बोस के किस्से सुनाता···उन्होंने पाताल लोक से यात्रा की और जब धरती पर फिर

प्रगट हुए, तब बलोची का बाना धारण किया, जब वरदान पाय गये' तब अब देश लौटे हैं। भारत माता की आजादी का वरदान माँगा तब से बराबर आकासबानी होय रही—नेता जी भारत माता को आजाद करने के वास्ते पूरब से आय रहे हैं, सूरज देवता के साथ, सात घोड़े के रथ पै। वो रथ दिल्ली जायके रुकेगा, वहीं राजतिलक होगा उनका जैसे दशरथ जी ने राम को बनवास दिया था, वैसे ही गाँधी जी ने सुभाष जी को देश निकाला दिया है, बड़ा, बड़ा करतब है इसमें। अवतारी पुरुष हैं नेता जी···।'

१५

इस तरह के अवतारों पर रंगीले हमेशा से विश्वास करता आया था। वह दिन बीत गये, और आज सरनाम, रंगीले, रमेसुर, लछमन और बाबा सरायमें कलिया परांठे वाले की दुकान पर बैठे थे···वहाँ गर्मागर्म खबर थी—'भगवान किसन ने कलंकी अवतार लिया है···दीन-दुखियों की आरत-पुकार सुनकर आखिर भगवान जी को अवतार लेना पड़ा।'

'कहाँ की बात है ? कौन कहता था ?'

'भगीरथ जोतिषी से पूछो, बगैर नक्षत्र इतनी बड़ी आत्मा जन्म लेगी ?'

'अवतारी के जनम पर सब नछत्तर बदल जाते हैं···।'

'इसमें कोई धोखा है।'

'पापी तो वैसे भी उनके दर्शन नहीं कर पाएगा···भगवान सामने होंगे, पर उनकी दिरिष्टी पर पर्दा पड़ जायगा। दर्शन नहीं होने पायेगा।'

'हाँ हाँ, सो तो है ही।'

'पर खबर कौन लाया है।'

'खबर कौन लायेगा, अघौरी बाबा को सपना दिया है, छन, पल, दिवस सब बतलाया है सपने में, स्थान तक···नदी पर देवी मन्दिर के पास वाली कोठी के अहाते में। बात फैलाने की जरूरत नहीं है···।'

बात फैलाने का यही गुरु-मंत्र है। गली-गली, बस्ती-बस्ती, गाँव-गाँव कलंकी अवतार की खबर हवा की तरह फैल गई। महकमा पुलिस के कान खड़े हुए। रंगीले ने सारी जान-पहचान एक कुनियाते हुए ऐलान किया—'अगर कोतवाल और कलक्टर की सी. आई. डी. ने धर्म के मामले में टाँग अड़ाई, तो तोड़ दी जायगी···।'

कोतवाल और कलक्टर दोनों मुसलमान हैं। इसीलिए विघन डालना चाहते हैं···।' भभूत लगाये लछमन बाबा ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा।

कलंकी अवतार के लिए धर्मप्राण जनता सजग हो गयी। आखिर किसन जी की यही लीला भूमि रही है, मथुरा वृन्दावन न सही, अबकी इस तरफ किरपा हुई है। जिले की पाँचों तहसीलों के साधु वैरागी जुटने लगे। धर्मशाला में उनका सतसंग हुआ। देवियों के पास वाली कोठी के अहाते के चारों ओर धुज और पताकाएँ फहराने लगीं। यज्ञ होने लगा। बस्ती के पंडितों ने आँखें टेढ़ी कीं। कृष्णावतार हो और बाहर के ब्राह्मण उसका जस लूटें! अजीब शंका और रहस्य व्याप्त हो गया। दुलारे पंडित ने कहा—'बकवास है···।'

तभी शिवराज बाजामास्टर के साथ उधर आ निकला। वह समझा रहा था—'मास्टरजी, उससे मिल सकना इतना आसान नहीं। रामलीला, नुमायश पर हो भी जाता था···सिनेमा में मारकाट की फिल्में आ रही हैं, कोई भक्ती की आये, तो उसका मिलना हो।'

'कलंकी अवतार देखने नहीं जायेगी?' वहीं मिल के बात कर लो। दो-तीन दिन भीड़भाड़ जरूर होगी···।' मास्टर ने सुझाया।

कोठी के मैदान में रोज भण्डारे हो रहे थे। जनता तिथि से पहले पहुँचने लगी। बाबा लोगों ने जगह घेर रखी थी। एक-एक फलांग तक आदमी बाहर रह जाता। आखिर वह दिन भी आया। शाम होते-होते हजारों की भीड़ झुक पड़ी···लाठियाँ और चिमटे ले-ले कर बाबा लोग इन्तज़ाम कर रहे थे। आज दर्शन केवल माताओं के वास्ते।

रंगीले उलझ पड़ा—'इतना इन्तजाम हमने किया और परथम दरसन का लाभ तक नहीं।'

'आज केवल माताओं के वास्ते···।' एक ही उत्तर था कि भीड़ झुकती जा रही थी, पर साधुओं के चिमटों ने पुलिस की संगीन से ज्यादा असर दिखाया। 'तो पिता लोग कल दरसन पायेंगे।' रंगीले ने कह ही दिया। हँसी का फव्वारा फूट पड़ा और एक चिमटा उसकी पीठ पर पड़ा। गलती महसूस करने का दिखावा करते हुए जीभ दाँतों से काट ली।

नारियाँ भीतर जा रही थीं। कृष्ण जी गोपियों के साथ एक पलंग पर बैठे थे, हाथ में बाँसुरी, सर पर मोर मुकुट। अद्भुत रूप था, औरतें देखतीं और निहाल हो जातीं। फूल-मालाओं और भेंट से इर्द-गिर्द की जगह भर गई। कृष्ण जी की बगल में गोपियों के साथ बलराम भी थे। बाहर खड़ी जनता घोर जयनाद कर रही थी। नारियाँ दर्शन के लिए टूट पड़ती थीं। सहसा कृष्ण जी ने चंवर डुलाने वाली गोपी की बाँह पकड़ ली—'मातु···मातु···' उनके पैरों की पैजनियाँ खुनकने लगीं···झुन झुन झुन···और बालकृष्ण ने एक युवती की गोद में सिर घुसा दिया···'मातु···' दोनों हाथों से स्तन पकड़कर बछड़े की तरह मुँह रगड़ने लगे उन पर···।

'दया हुई···भगवान् की माँ! जनम सफल हुआ···बाल कृष्ण ने स्तनपान किया। धन्य हो माई। धन्न···धन्न।' आवाजें गूँज उठीं। युवती मदहोश होकर अधलेटी हो गई, बालकृष्ण उसे छोड़कर घुटनों

चलने लगे···'मातु···मातु !' औरतों की श्रद्धा उमड़ पड़ी···।

'बड़ी भागवान है छतरपुर वाले की बिटिया, साच्छात भगवान् जन्म लेंगे उसकी कोख से···। कौशल्या माई का दर्जा मिल गया, इसे कहते हैं ऊपर वाले की कृपा !' कोई कह रही थी।

कृष्ण जी की बांसुरी कूक उठी। गोपियाँ भाव विभोर हो गईं। बीच में कृष्ण, चारों ओर गोपियाँ। नारियों ने गोल बाँधकर कृष्ण धुन शुरू कर दी थी—'देवकी का लाला देखो, गोपियन के संग रास खेले।

गोपियन संग रास खेले···।'

कृष्ण जी बाँह पकड़-पकड़ कर दो-तीन को पकड़ लाये, पैरों की थाप के साथ बाँसुरी की लय और चटकती तालियों की ताल ! कृष्ण उन्मत्त हो गये थे, जगह-कुजगह छेड़ देते, चिबुक पकड़कर मुँह उठा देते। निर्लिप्त होकर बाँसुरी बजाने लगते। जिसने एक दरस पाया, जन्म सफल हुआ। बाहर हरिकीर्तन हो रहा था। मर्दों की भीड़ छँट रही थी, पर औरतें चींटी की तरह वहीं चिपकी थीं। बड़ी रात तक रासलीला होती रही, तब कहीं बलराम ने कहा—'गोपीनाथ शयन कीजिये···।'

छतरपुर वाले की बिटिया रम्मी अपनी लाज किसी से नहीं कह पाई। साथ वाला भी कोई नहीं। सीधी हेम के पास पहुँची, 'हेमा दिदिया···।' कहते-कहते उसने हेम के दोनों हाथ अपने वक्ष पर कसकर दबा लिये। रम्मी बौराई हुई थी। 'ऐसा नशा चढ़ा होगा ! तन की सुध-बुध न रही। आँखें मुँद गयीं, ऐसा तेज था। बेहोश-सी होने लगी।'

'ऐसी भला क्या बात थी ?' हेम ने पूछा तो रम्मी ने पिछली रात कृष्ण के स्तनपान वाली घटना बतला दी। हेम का रोआं-रोआँ भभर आया···रोमाँच-सा हो आया। दौड़ी-दौड़ी वह गई और भगवान के सिंहासन के सामने माथा टेक दिया। प्रकृतिस्थ होकर बोली—'रम्मी, तुझमें तेज समा गया है। न जाने कैसा लगने लगा था अभी। सच-

मुच बेहोशी छाई जा रही थी ।'

मन में बड़ा अरमान लेकर हेम शाम को दरस-परस के लिये गई, माँ साथ में थी, फिर भी वह आगे बढ़ गई । लेकिन आज आदमियों की अटूट भीड़ थी । उस भीड़ में जब हेम ने शिवराज को अपने ठीक पीछे देखा, तो पसीना छूट गया । पर ऐसा मौका कहीं बार-बार मिलता है ? बागा लोगों के डेरों के पीछे नदी की ढलवान में वे उतर गये । अँधेरा गहरा था । दोनों इतनी निकटता पाकर खो गये । हेम आँखें झुकाये खड़ी थी और शिवराज थर-थर काँप रहा था । बाजामास्टर की हिदायतें उसके दिमाग में गूँज रही थीं, पर हिम्मत नहीं पड़ती थी । कैसे हुए···किधर से, कहाँ से·· कैसे ? ऊपर सड़क पर गैस चमकी, रोशनी से बचने के लिए वह और नीचे खिसका तब एकाएक उसका हाथ हेम की बाँह पर था···अपने सामने करके आँखों में झाँकना···उसने हेम की दोनों बाहें पकड़ कर उसे सामने कर लिया···प्यार से कुछ पूछा । वह धीरे से बुदबुदाया— 'हेम !' और हेम की क्वांरी सांसों की महक ने भाप की तरह उसके अस्तित्व को पूरी तरह से ढक लिया ··साँस कड़ी हो गई और दोनों के बोल सूखे गले में अटक गये । हेम के पैर उखड़ गये···।

शरीर तनी तांत की तरह झन्ना रहा था···रम्मी के अनुभव से कहीं गहरा अनुभव । अपने को सँभालते-सँभालते वह शिवराज के पैरों में बैठ गई । उसके चरणों पर उसकी हथेलियाँ थीं···तपती हथेलियों का स्पर्श ! ऊपर सड़क पर फिर गैस की रोशनी चमकी । शिवराज ने तब पहला खत उसके हाथों में थमा दिया था, जिसमें एक तस्वीर लिपटी थी ।

सचमुच वह कितना ऋणी था बाजामास्टर का ! हेम और शिवराज को पास ले आने का सारा श्रेय उसे ही था । बाजामास्टर ने जीत की हुंकार भरकर कहा, 'देखा, पहले मंत्र में चरनों में आगई । अब आगे अपना समझो-बूझो । दो-दिन गोता लगा जाओ, देखो तब

कैसी मछली की तरह तड़पती है...।' शिवराज को यह राय पसंद नहीं आयी थी। दो दिन ! कैसे रहेगा वह, बिना हेम को देखे ! पर बाजामास्टर की बात उसे माननी पड़ी थी। वही तो सबसे बड़ा सहायक था, और फिर जिस स्कूल में वह संगीत मास्टर था, उसीके पिछवाड़े हेम का मकान पड़ता था। छिपकर आया गया था, चक्कर काटे तो जरूर पकड़ जायेगा।

१६

उन दिनों बाजामास्टर संगीत वाले गुरुजी कहलाते थे, आज से चार साल पहले। अच्छी तरह दिन गुजर रहे थे, पर कन्या विद्यालय के अधिकारियों ने एक सूरदास खोज लिये, बूढ़े और जरूरतमंद। बाजामास्टर की नौकरी छूटी, तो सबसे अधिक सदमा शिवराज को हुआ था। इस बीच बाजामास्टर ने न जाने कहाँ-कहाँ की खाक छानी, आखिर करम ने फिर यहीं ला पटका। इस बार वह रामलीला मंडली के साथ आये, तो शिवराज ने इन्हें बहुत बदला हुआ पाया—और बाजामास्टर ने शिवराज को। चार साल पहले का शिवराज कितना बदल गया था ! वह आदमी हो रहा था। बाँहों के रोएँ काले पड़ रहे थे, अंग-अंग में कड़ापन आ रहा था। बाजामास्टर जैसे उतार पर था। अब एक ही धुन थी—'एक नाटक मंडली।'

ऐसी नाटक मण्डली शिवराज, जो अपने पैरों पर खड़ी हो सके ! सब देख चुका हूँ···फाहिशाओं के चौबारों पर भी गाया-बजाया···

नरक में रहा, पर जब भी हारमोनियम की कुंजियों पर अँगुलियाँ पड़ीं, सब भूल-बिसर गया। इसकी आवाज न जाने कहाँ उठा ले जाती है शिवराज!' बड़ी गहराई से बाजामास्टर कहता।

'नाटक मण्डली बन सकती है।' शिवराज सहारा देना।

'बन नहीं सकती, बनाना है···बनाऊँगा! उस नरक से एक यही वरदान या शाप लाया हूँ शिवराज! लीला कहती थी—मैं ठीक हो जाऊँ तब हम दोनों मिलकर चला लेंगे नाटक कम्पनी! वह जानती थी कि मेरा यह सपना है···पर तब वह लाचार हो चुकी थी। कहने को तो लीला रंडी थी, पर मेरे हारमोनियम को दोनों बाँहों में समेट कर, माथा टिका देती थी···उसके बाल ढक लेते थे कुंजियों को! लीला कहती थी—'तुम इतना अच्छा बजाते हो फिर भी कोई नहीं आता।' और मैं उसकी हताश प्रशंसा का जवाब देता था—'तुम इतना अच्छा गाती हो, फिर भी कोई नहीं आता!' तब वह दूर अँधेरे को ताकती हुई कहती थी—'यह गाना-बजाना ढोंग है सब, सीधा व्यापार करना चाहिए···।' तभी उसने सोचा था, हम नाटक कम्पनी भी तो खोल सकते हैं···'रूखा-सूखा खा लूँगी पर यह व्यापार नहीं करूँगी, और कौन-सा धंधा है हमारे लिए···' लेकिन वह हार गई—एक तरफ भूख और मौत खड़ी थी, दूसरी तरफ ज़िन्दगी और खुश-हाली। उसने तन का सौदा करके जिन्दगी को ही चुनना मंजूर किया! क्या बुरा किया उसने शिवराज। कितनी बड़ी सौगात होती है, जिन्दगी! पर खुशहाली की जगह भयंकर रोग ने उसे डस लिया। अपनी भरी जवानी के आखिरी खोखले दिनों में वह मुझसे सुना करती थी—मीरा और सूरदास के भजन। घबरा कर पूछा करती थी—'मैंने गलती तो नहीं की, जिन्दा रहने के लिए किया था यह सब। तुम तो गवाह हो! कम्पनी बन सकती तो मैं सिर्फ तुम्हारी होकर रहती···बोलो, मुझ पर विश्वास करते हो···बोलो, चुप क्यों हो···?' कौड़ी की तरह निकली हुई उसकी आँखें मुझे ह?शा घूरती हैं। बार-

बार कहती हैं—कम्पनी बन सकती तो मैं सिर्फ़···' कहते·कहते बाजा-मास्टर चुप हो गया—'सिर्फ एक नाटक कम्पनी।' फिर एक गहरी साँस खींचकर उसने बताया—'इसीलिए इस रामलीला मण्डली में चला आया···वह सूरदास और मीरा के भजन सुनते-सुनते मरी थी। मेरी मीरा मर गई थी शिवराज। मेरी मीरा विष नहीं झेल पायी··· हँसते-हँसते उसने विष का प्याला पिया था। मन नहीं लगता शिवराज! 'मीरा लीला।'

बाजामास्टर के बारे में जब भी शिवराज सोचता है, तो उसके सामने वही दृश्य सबसे पहले नाच जाता है—हेम उसके पैरों पर हथेलियाँ रखे हैं···और बाजामास्टर नदी के पुल पर उसका इन्तजार कर रहे हैं···।

१७

कलंकी अवतार के समय बंसिरी तीसरी बार दिखाई पड़ी। सरनाम देखकर अवाक् रह गया। कितनी निखर आई थी बंसिरी। गजरों से लदी, बनी-ठनी बंसिरी। उसकी चाल में मद था। सरनाम ने देखा, आँखें मिलीं, लेकिन वह आँखें चुरा गई—उसकी काजल रची आँखें सरनाम के दिल में उतरती चली गयीं। कृष्ण की गोपियों में सबसे ज्यादा जँच रही थी, चँवर डुलाते समय उसकी गोरी बाँह मुड़ती तो जैसे रोशनी बिखरती थी। एक क्षण के लिए सरनाम का माथा झुक गया, उसे लगा वह बंसिरी नहीं···और अगर है भी तो अब बेहद दूर चली गई है···मोबी-आइल, ठर्रा, और पेट्रोल में बसी उसकी काया उस चन्दन की सुगन्ध को सह नहीं पाई। बंसिरी कितनी दुर्लभ···दुर्लभ और दूर हो गई। उसकी आँखों में कोई परछाईं तक नहीं उभरी।

चँवर रखकर उसने कृष्ण जी का पीताम्बर संभाला, उनकी ओर

देखकर धीरे से मुस्कराई···सरनाम भीड़ चीरकर और आगे बढ़ा। भ्रम तो नहीं, पर नहीं, उसकी आँखें धोखा नहीं खा सकतीं। कई बार उसने कोशिश की, पर बंसिरी ने नहीं निहारा। उसके लिये खड़ा रह सकना सम्भव नहीं था। जिस पुरानी मोटर पर वह रंगीले, छदामी और भगीरथ ज्योतिषी के साथ आया था, उसी पर अकेला लौट गया।

पलटन में धर्मगुरु शिक्षा दिया करते थे—कभी मन में नहीं समाई पर आज उसे लगा कि वह कहाँ पहुँच गया है। डकैतियाँ, दड़ा, नाजायज़ शराब और शिवराज···पड़ा-पड़ा यही सोचता रहा—शिवराज से कहेगा, तू अपने घर जा अब, बस बहुत हो लिया। युद्ध के बाद जब वह लौटा था तब जिन्दगी बिताने की तस्वीर उसके सामने थी, पर सब बदल गया, सब बिगड़ गया। आज उसे लगा कि बंसिरी औरत होकर भी कितनी ऊँची उठ गयी, और वह।

तभी गालियाँ देता हुआ रंगीले भीतर दाखिल हुआ। सरनाम चुपचाप लेटा था, 'क्यों, कुछ तबीयत खराब है। हम मर गये पदते-पदते, कहके चले जाते···।'

'सवारियाँ तो थीं।'

'पैसा तो नहीं था, हुआ क्या ? वह ज्योतिषी जी अड्ड पर खड़ रो रहे हैं तुम्हारे नाम को···?'

'सुबह देखा जायेगा।'

'मतलब की बात है। उन्हें इस सब में गोल-माल नजर आ रहा है। शक हमें भी है।'

बिजली की तरह एक विचार सरनाम के दिमाग में कौंध गया—बंसिरी और गोपी ! यह बात दिमाग में आई ही नहीं थी। वह तो देखता रह गया था।

अगर धूप की सुगंध में बसी बंसिरी । वृन्दावन की ग्वालिन बंसिरी···कुछ सोच ही नहीं सका। चन्दन-सा रंग और पवित्र हँसी,

काजल लगी कजरारी आँखें, मन में बसे कृष्ण की सहचरी···जैसे सपना हो और उसी सपने की हालत में वह घर लौट आया था। आज अपने दोष पहचाने थे। रंगीले की बात से उसकी आँखें चमकीं···घर में ताला मारकर अड्डे पहुँचा। भगीरथ ज्योतिषी, छदामी बारेलाल, लपकना, ताहिर और लड्डन मिसकोट में शामिल थे। बड़ी रात तक रहस्यमय ढंग से बातें चलती रहीं···सर्वदानन्द आश्रम वालों से वह अभी जूझा ही था, बोला, 'यह सब ढोंग है। हिम्मत करो तो अभी कलई खोल दी जाय सालों की···कहते-कहते उसके सामने बंसिरी थी, वह उसे नंगा कर देगा, उन काजल लगी आँखों में मिर्च की बुकनी छिड़क देगा। कृष्ण की पीठ पर हण्टर चटकाता हुआ लायेगा और बंसिरी को···

'कल छतरपुर वाले लड़किनी के दूध पकड़ लिये। अम्मा-अम्मा कह के···' छदामी ने बताया।

'रासलीला रचाई थी, चट-औचट हाथ डालता था औरतों पर···'

'यह सब घोर अन्याय है धर्म के नाम पर···' ज्योतिषी जी ने लूकी लगाई।

'आसरम वाले महन्तों का हाथ है इसमें···' सरनाम को पानी पर चढ़ाने के लिए ताहिर ने जोड़ा। पर सरनाम के सामने सिर्फ बंसिरी थी···उसकी बाँह मरोड़ दी है···सिल्क की अंगिया फाड़कर उसके शरीर को नाखून से चींथ डाला है, उसका बदन नीला पड़ गया है···निस्सहाय बंसिरी उसके सामने टूटी हुई खड़ी है। केवल विध्वंस···

१८

और मैदान के बाहर इमली के पेड़ पर सात आदमी छिपे हैं··· जनता वापस जा चुकी है। कृष्ण मण्डली सामान बटोर रही है। आज भगवान् अर्न्तधान हो रहे हैं। वह करेगा अर्न्तधान। अँधेरी रात और इमली के झाड़ में छिपे सातों लोग। तने की ओट तले पिलाई लाठियाँ टिकी हैं, सरनाम देख रहा है···बलराम बंसिरी से ठिठोली कर रहा है, एकदम बोला, 'कूद पड़ो···'

सबर किसे था। गद्-गद् सातों जमीन पर थे। इमली थर्राई और कृष्ण मण्डली के गोपों पर लाठियाँ बरस पड़ीं। बाबा लोग चिमटा लेकर बचाव के लिए कूद पड़े, चार-पाँच बाबा खड़े दूर शान्ति-शान्ति पुकारते रहे···सब तितर-बितर हो गया। चढ़ौती लूट ली गई। पुलिस के आने तक कृष्ण-मण्डली के लोग भाग खड़े हुए थे। गोपियाँ नदारद थीं···सिर्फ बलराम जमीन पर पड़े कराह रहे थे। पुलिस आने की बात सुनकर सरनाम और बाक़ी साथी जेल वाली सड़क से घूम-

कर शहर पहुँच गये। बाद में बलराम की शनाख्त हुई···निकट के एक गाँव का कोरी था, जो बहुत दिन पहले किसी रास मण्डली के साथ गाँव छोड़ गया था।

बंसिरी का कोई पता सरनाम को नहीं लगा। शायद उसे धोखा ही हुआ हो। अगर वह होती तो मिलती जरूर···कम-से-कम उससे पूछती कि सोरों वाले मेले में कहाँ रह गया था? बात देके क्यों नहीं आया? कितना इन्तजार किया मैंने···वह जरूर मिलती···अवश्य ही उसे धोखा हुआ है।

इस घटना का शोर बस्ती में मच गया, लेकिन कोई गिरफ्तारी नहीं हुई। कृष्ण-मण्डली के कुछ बाबा लोगों ने आश्रम वाले महन्तों से मिलकर मामले को आगे बढ़ाने की कोशिश की, पर सफल नहीं हुए। बलराम अस्पताल से छूट कर यहीं बस गये। सरनाम के पास उठना बैठना हो गया उनका···

१९

चाय वाली दुकान पर शतरंज की बिसात बिछी थी। रंगीले मठिया पर से गाँजे का दम लगाकर आया था···'बम, बम···क्या लपट उठी कि चिलम मशाल हो गई···'

शतरंज में मशगूल खिलाड़ियों ने नहीं सुना। तब तक बगल वाली दुकान के सामने खंजरी खनक उठी···एक बगल में झोला लटकाये, सिर पर गंजी की टोपी और माथे पर तिलक···घुटनों तक धोती और बदन पर एक फतुई···इन्हें लोग अच्छी तरह नहीं पहचानते। दो। एक बार यहाँ दिखाई पड़े थे। सुना, बड़े भक्त आदमी हैं। साधु समागम में विश्वास रखते हैं और 'सतसंग माला', 'नारी प्रबोधिनी माला' के लेखक-कवि हैं। जिले भर में होने वाली सभी सतियों पर इनके कवित्त मशहूर हैं। सरसुती जिह्वा पर बिराजती है। खंजड़ी पर जोर की थाप देकर कवि-जी ने झोले से किताबें बाहर निकालीं, उन्हें बायें हाथ में पकड़ा और दाहिने हाथ को कान पर रख कर

अलाप लिया 'आँ···हाँ···

सतियाँ ही इस देश की, हैं अनमोल विभूति ।'
जिनकी शक्ति न आज तक, मिली किसी को कूति ।'

फिर राधेश्याम की रामायणी चौपाई की लय में उन्होंने 'अगला हवाल' प्रस्तुत किया···

'हमने यह कवित्व खुद जाकर ले सच्चा हाल बनाई है।
आशा है इसमें भूठ बात रुपये में एक न पाई है ॥'

सज्जनो । गोंद, जिला मैनपुरी की सत्ती सान्तीदेवी के सतीत्व का सच्चा चमत्कार । यह घटना बिल्कुल सच्ची है, इसका किस्सा खुद गोंद जाकर दरियाफ्त किया गया है और शेष समाचार सरस्वती जी की कृपा से खुद आँखों देखा जैसा लिखा गया है···तो हे धर्म के मानने वालो । बिल्कुल सरलभाषा में, अरु राधेश्यामी तर्ज में सुनिए···

फर्रुखाबाद अरु मैनपुरी, यू. पी. के हैं मशहूर जिले ।
या यों कहिए तम्बाकू के अच्छे सच्चे मजबूत किले ।
है इन्हीं जिलों की यह घटना जो आगे मित्र सुनाता हूँ···'

चारों तरफ भीड़ जुटने लगी थी और कविजी कान पर हाथ रखे अलाप ले-ले कर एक-एक छन्द गा रहे थे···

'सत्ती के पद पाने हित बी० ए० की कुछ न जरूरत है ।
हो अगर पढ़ी तो हर्ज नहीं, यह और भी अच्छी सूरत है ।'

जुटी हुई भीड़ के सर कविजी की बात के अनुमोदन में हिल गये, 'सच्ची बात है, सत्ती के लिए बिल्कुल जरूरी नाई ।'

कविजी का हौसला बढ़ आया था, पूरे गले से वे सत्ती शान्ती देवी की गाथा सुना रहे थे । गले की नस फूल आयी थीं । भीड़ दत्त-चित सत्ती कथा सुन रही थी···

'सती जी की जै···गोंद की सत्ती की जै !' भीड़ ने अंत में गेंदा कवि की आज्ञा का पालन किया और उनका आखिरी बयान सुनने के लिए उत्सुकता से ताकने लगी। गेंदा कवि ने छपी हुई दुअन्नियाँ पुस्तक

को जनता की आँखों के सामने करते हुए गाया।

'असली की दरकार है, अगर आपको मित्र।
तो पुस्तक पर देख लो 'गेंदानी' का चित्र॥

कीमत दो आने। सिरफ एक दुअन्नी। और भाइयो।

पढ़कर लो जनम सुधार सत्ती की सत्य कहानी।
सत्ती की सत्य कहानी, सतियों की मान बढ़ानी॥

प्यारी माताओं और बहनों के वास्ते ले जाइए। उन्हें पढ़ाइये।

दस बीस किताबें हाथों-हाथ विक गयीं। तर्ज बहर में प्रचार गान का बड़ा असर पड़ता है। पैसे जमा करके गेंदा कवि ने जेब में डाले और एक बार फिर लोगों की ओर ताका···अब बिक्री का कोई डौल नहीं, कन्धे की डोरी में झूलती खंजड़ी उनके हाथों में थी और अँगुलियाँ तर्ज बहर का राग छेड़ रही थीं। खंजड़ी में पड़ी झुनकियाँ धीरे-धीरे बजती आ रही थीं। चौराहे पर आकर गेंदा कवि खंजड़ी बजाना रोक कर किसी के इन्तजार में खड़े हो गये। रंगीले अपनी पीनक में था। बाकी लोग फिर शतरंज में उलझ गये थे। एक ने गेंदा कवि को देखते हुए मोहरा हाथ में पकड़ कर कहा···'आज सराय में जशन होगा कोई ?'

'कैसे।' दूसरे ने मोहरा चलने का इशारा करते हुए पूछा।

'गेंदा कवि आये हैं, सराय में ही ठहरे है आकर कोई चमूना··· माल, बेटा···माल।'

तब तक अड्डे से सरनाम आया और वह शतरंज वालों के पास ठिठक गया। उधर से मगन मिस्त्री रुककर गेंदा कवि के पास अटक गया। सरनाम को कुछ खला मगन ने उसे देखा था जैराम तक नहीं। रँगीले दुकान की पटिया पर अधलेटा एक मुर्गी की टाँगों के बीच आँखें गड़ाये न जाने क्या खोज रहा था। 'मर जायगा साला एक दिन।' सरनाम बोला। सुनकर एक ने जोड़ा, 'पगला जायेगा, जरा गर्मी और बढ़ने दो···' अपनी हरकत पर कसे हुए तुक्के सुनकर रंगीले बत्तीसों दाँत

निकाल कर हँस पड़ा।

मगन मिस्त्री ने गेंदा कवि से केवल दो-तीन क्षण कुछ फुसफुसा कर बात की और कुछ रहस्य-भरा इशारा करके इधर चला आया। सरनाम को जैराम किया और बैठ गया। बैठते ही एक ने पूछा··· 'कोई डौल है ?' मगन मिस्त्री मुस्करा दिया। सरनाम ने बात भाँप ली, रँगीले की ओर देखा और मन-ही-मन कुछ तय किया।

'देखा है।' सरनाम ने मगन मिस्त्री से पूछा।

'हूँ···आज ही आई है।' मगन ने कहा।

'कहाँ की है ?' इसका उत्तर मगन ने हाथ के इशारे से दिया ···पता नहीं।

'जाओगे'···उत्तर में मगन ने अनिच्छा जताई। पर सरनाम जानता था, वह जायेगा ज़रूर। मगन मिस्त्री भला चूक जाय। मगन ने कहा, 'बड़ा धड़ियल व्योपारी है पंजाब तक व्योपार करता है। पचासों निकाल दीं···'

'शकल से नहीं लगता।' सरनाम ने कहा।

'एक से एक अव्वल लाता है···किस्मत जबर है, इन्दर का अवतार है कविराज। हर वक्त दरबार भरा रहता है। कहता था··· मेनका है मेनका।'

शाम को सरनाम जब सराय पहुँचा तो मगन मिस्त्री कुएँ वाली कोठरियों की ओर जाता नजर आया।

२०

गेंदा कवि भी बाहर निकल आये थे। सरनामसिंह का व्यक्तित्व देखकर उन्होंने प्रशंसाभरी नज़रों और मीठी ज़ुबान से राम-राम किया। बात करने की सुविधा के लिए वे दोनों पजावे की ओर चले गये। गेंदा कवि उसे समझा रहे थे···'खतरा नहीं है सिंघजी, मन से आ ई है। इसमें व्यौपार की बात नहीं, असलियत है। किसी भी तरह का झगड़ा-टन्टा नहीं, मन माफिक रखिए···सुन्दरापन के लिए क्या पूछना, अहा हा···देख भर लें सिंघजी। किस्मत की बात है, जो इस तरह आ गई। ठाकुर-जमींदार के ही लायक है सिंघजी, लेकिन सबसे ऊपर पैसे का जोर है। मैं खुद ऐरे-गेरे के हाथ नहीं देना चाहता आप ही अपने चरनों में डाल लें···उद्धार हो जाय विचारी का।' कहते-कहते गेंदा कवि भावुक हो आये थे। जैसे उनके भीतर दया का समुद्र उमड़ आया हो और उनकी परोपकारी वृत्तियाँ कुछ उपयोगी काम कर सकने के लिए अकुला रही हों।

'देखा जायेगा।' कहकर सरनाम चुपचाप चला आया। और वह सोच रहा था···यह एक तरीका हो सकता है···रँगीले जन्म-भर के लिए गुलाम हो जायेगा। पुलिस वालों की तरफ से कुछ राहत मिलेगी और फिर साथ में एक आदमी बढ़ता है। जान तो फौरन जायेगा भूखा घूमता है···सुनकर बौरा जायेगा···सर के बल चल कर आया करेगा। पर एक तस्वीर···एक अधूरा महल उसके सामने उभरता है। स्वयं उसका महल, जो बनते-बनते रह गया। अच्छा ही हुआ ये सब झंझट उसके बसके नहीं। फक्त दम सबसे अच्छा। न मौत का डर न होनी-अनहोनी का। और फिर जहाँ पैसा डाला वहाँ सब है। कमी क्या है ? बंध के रह सकना उसके स्वभाव में भी नहीं, यही सब करना होता तो माँ-बाप के जीते जी करता। उनकी आँखे भी सिरा जातीं···छोटा-सा एक घर बनता, वहीं गाँव में रहता और जीवन काट लेता। पर जो नहीं होना था, उसके लिए चिन्ता या अफसोस कैसा ? उसे किसी ने रोका तो नहीं था, आज भी वह चाहे तो सब कुछ हो सकता है। उसका अपना घर। गोबर लिपी दीवारें और घर की शीतल छाँह। हर वक्त किसी की दो आँखों का पहरा···कम से कम एक बात तो जी लेता ऐसे। एक बार···दोषी भी कौन है, स्वयं उसके सिवा। ये लड़की···नहीं, बिल्कुल नहीं···न जाने किस-किस के साथ···और फिर बाँहों में बल होगा, तो खुद भगा लायेगा। ऐसे नहीं···

दूसरे दिन सराय के बड़े फाटक के नीचे सब शौकीन जमा हुए थे। इस सराय में न जाने कितने काम होते हैं। मगन मिस्त्री धारीदार पैजामा और तंजेब का बेल—बूटेदार कुरता पहने था···आज ही बाल कटवाए थे···कलाई में बेले का हार और आँखों में दारू की मस्ती। संगमलाल तमाखू वाले, जो अपने को गुप्ता कहते थे—आँखों में सुर्मा डाले, सैन्चुरी की लकदक धोती पहने, खस के इतर से महक रहे थे। दीनानाई तारकशी वाले इन लोगों की तड़क-भड़क देखकर तारों से छिली हुई अपनी अँगुलियाँ देख रहे थे और अमजद अली

किसी पैसे वाले की पैरवी करने के लिए बारी-बारी से एक-एक मुंह ताक रहे थे क्योंकि मुसलमान होने के कारण उनका सिप्पा नहीं बैठ सकता था।

रंगीले सरनाम सिंह के साथ एक ओर उकडूं बैठा था। आखिर सब शौकीन एक-दूसरे को अपनी दरियादिली दिखाते हुए परांठे वाले की बैंचों पर जम गये···गेंदाकवि खुद इधर आयेंगे, यही कहलवाया है। मगन मिस्त्री ने कच्ची शराब की एक बोतल सामने रखी और दौर चल पड़ा···खाने-पीने के दौर के बाद सभी शौकीन अंधेरा होते ही सराय में दाखिल हुए। कोठरी में एक दिया जल रहा था···कोने में पड़े तख्त पर दिये की मटमैली रोशनी में एक स्त्री काया गठरी बनी बैठी थी। सिसकियों से उसकी पीठ हिल रही थी। खुले पैरों की अंगुलियों में बिछुए थे, पैर महावर से रंगे थे, एक लड़ी की पायलें पैरों में पड़ी थीं—देखते ही रंगीले ने सरनाम के कानों में फुसफुसा कर कहा···'ये झंझट का सौदा लगता है, ब्याहता है शायद···।'

'अकल नहीं है तो चुप रहा कर।' सरनाम ने प्यार से डांटा। गेंदा कवि ने उन दोनों की ओर देखा और बोलने लगे, 'बिटिया देख इन लोगों से सरम कैसी·· सब अपने हैं मुसीबत में काम आने वाले कहाँ मिलते हैं। ये सब हमारे दुर्दिन के साथी हैं···' कहते-कहते उन्होंने एक नजर सभी पर कुछ इस तरह डाली जैसे वे लोग परोपकार करने आये हों, और सबसे ऊपर वह खुद इसी से प्रेरित होकर इतनी मुसीबत उठा रहे हों, फिर बोले, 'एक नजर उठा कर देख बिटिया, ये सब अपने हैं···मगनलाल मिस्त्री, दीनानाथ, ठाकुर साहब पराया कौन है? देख तो एक बार।'

सरनाम ने एक गहरी नजर उस लड़की पर डाली, जिसकी सिसकियाँ अभी तक बन्द नहीं हुई थीं। उसका मन उचट गया—पत्थर-दिल पसीज आया···मन हुआ रंगीले से कहे, 'उठ चल···' पर रंगीले की आँखें उधर ही गड़ी हुई थीं···इनमें भूख अपना मुँह फाड़े बैठी थी।

मोटर इंजन की तरह उसका माथा जलने लगा। सब बकवास है। यह सब क्या है ? जैसे कसाई बकरी खरीद रहे हों। लेकिन और लोग भी क्या इसके साथ ! बिक्री न हुई तो यहीं किसी कोठरी में पेशा करेगी···या दर-दर भटकना···जब तक जवानी है, तब तक—और उसके बाद ? कल्पना मात्र से उसे रोमाँच हो आया। आखिर किसी के हाथ तो पड़ेगी···शायद मगन के ही, जेब से वही कर्रा है··· पिछली औरत की तरह उसका भी हाल करेगा। ताड़ी पी-पीकर पीटेगा और किसी दिन ये भी पेट में बच्चा लिये जहर खाकर या फाँसी लगाकर जान दे देगी···।

तब तक भीतर से सब लोग बाहर आ गये। रंगीले बाँह पकड़ कर सरनाम को दूर अँधेरे में खींच ले गया और कुछ भी कहने की बजाय सिसक-सिसक कर रोने लगा। सरनाम भौंचक्का रह गया··· सचमुच रंगीले रो रहा था, उसकी आँखों से लगातार बूंदें टपकती जा रही थीं। सरनाम ने हाथ पकड़कर पूछा, तो केवल इतना कह पाया—'चलो दद्दा—बाहर चलो···' सरनाम के लिये कुछ भी समझ सकना मुश्किल हो रहा था, और रंगीले सिसकता जा रहा था, उसके सामने थी वह लड़की···।

गेंदा कवि उसकी टाँगों में हाथ डालकर घुसा हुआ मुंह जबरदस्ती ऊपर उठा रहा है···पर बार-बार वह लड़की अपना चेहरा घुटनों में धँसा लेती है। हलकी-सी एक झलक उन लोगों को दिखायी पड़ी—गोरा रंग···सिसकियाँ 'इनसे सरम कैसी।' गेंदा कवि के शब्द पुचकारना-मनाना। 'नखरे दिखा रही है···जरा मेरे साथ अकेला छोड़ दो···दो मिनट में हरा कर दूं···' मगन मिस्त्री की बात उसके कानों में चुभ रही है, फिर थोड़ी जबरदस्ती···सर से पल्ला सरक गया है···पसीने में भीगे हुए बाल और माथे पर बहकर आयी हुई खून की तरह सिन्दूर की लकीर···इधर-उधर चिपके हुए रोयें और भौंहों की नोक से टपकती हुई पसीने की बूंदें। आँखों से बेबसी में

ढरके हुए आँसू···पपड़ाए ओंठ और भरा हुआ चेहरा···उसने दोनों हाथों की उंगलियों से अपना मुख छिपा लिया है। वे अंगुलियाँ कातर की तरह चेहरे पर चिपक गई हैं। गेंदा कवि अंगुलियाँ नहीं खिसका पाया···जैसे उंगलियों की उन छड़ों के पार वह सुरक्षित हो···उनका मुर्दा रूप सुरक्षित हो···और जलती हुई मोमबत्ती की तरह उन आँखों से बूंदें अब भी टपक रही हैं···अब भी···अभी भी···।

और रंगीले रोए जा रहा है। सरनाम खड़ा असमंजस से देख रहा था। 'बोलता क्यों नहीं, कुछ बोलेगा कि यूँ ही रोता जायेगा।' सरनाम ने झिड़कते हुए कहा। 'मुझे वह नहीं चाहिए···मैं नहीं चाहता बस वापस चलो घर।' रंगीले बोला।

'आदमी की तरह रह, इस वखत देवताई सूझ रही है···शाम को फिर पागलों की तरह ताक-झाँक करेगा।' सरनाम ने बड़प्पन के लहज़े में कहा और बाहर लौट आया।

२१

कोठरी के उढ़के हुए दरवाजे के पीछे खड़ी छाया अपने भाग्य का फैसला सुन रही थी। दिये की रोशनी की लकीरें, जो दरवाजे की संधों से फूटकर बाहर जमीन पर पड़ रही थीं, वे भी उसकी छाया ने सोख ली थीं, इस क्षण वह अपने को न जाने कितना हताश महसूस कर रही थी। उसकी सारी चेतना उन लोगों की बातों की ओर उन्मुख थी···।

'अच्छा लो! पाँच सौ पर तोड़ होता है?' सरनाम ने कहा। गेंदा कवि भी सरनाम के लिए ज्यादा ढरक रहे थे।

चार सौ के नोट रंगीले के हाथ में देते हुए सरनाम ने कहा था, 'चुका रुपये रंगीले।' फिर गेंदा कवि से बोला था, एक सौ कम हैं, जब तक ये रुपया नहीं चुका देता, तब तक तुम रखो इसे कवि जी।' कहकर सरनाम उठ खड़ा हुआ था। गेंदा कवि ने फुरसत की साँस लेते हुए कहा—'ठीक है ठाकुर साहब। इसमें कोई हर्ज नहीं।' फिर

कोठरी की ओर देखकर उसने बड़े हर्ष से पुकारा था, 'बंसिरी बिटिया किस्मत खुल गयी तेरी···।'

बंसिरी का नाम सुनकर सरनाम के पैर काठ हो गये। बंसिरी, कौन बंसिरी ? और दूसरे ही क्षण उसे लगा कि उसने क्या कर डाला है ? और कौन होगी उसके सिवा। लेकिन न जाने क्यों मन खट्टा हो आया। नौटंकी की बंसिरी और सत्तार। और फिर कृष्ण मण्डली के साथ बलराम से आँखें लड़ाती हुई···जो उसे पहचान कर भी नहीं पहचानना चाहती थी। और फिर गेंदाकवि के साथ रही हुई बंसिरी··· न जाने कितने गेंदा, बलराम और सत्तार ! और उस दिन का वह घमण्ड। और उसका मन प्रतिहिंसा की दहशी खुशी से भर गया। एक अभिमान-भरी तृप्ति और एक अनूठा सन्तोष, पर मन में कहीं कसक भी थी। बंसिरी से भला हार-जीत क्या ? और फिर औरत से।

लेकिन चलते-चलते उसे लग रहा था, जैसे भीतर सब खाली हो, खोखला···एक खाली मकान जैसा···ऐसा मकान जिसमें रहने वाला सुधि का पाहुन एकाएक चला गया हो और सांय-सांय करती गरम हवा के थपेड़ों से घर के दरवाजे और खिड़कियों के पल्ले भटाभट दीवार से टकरा रहे हों···।

२२

और रंगीले पाँच सौ रुपये का कर्ज़दार होकर बंसिरी को ले आया। मोटर अड्डे के सामने वाले कच्चें मकान में उसने अपनी गृहस्थी जमाई। सरनाम हमेशा यही सोचता रहता···उसने अच्छा किया, नहीं···नहीं, उसने बुरा किया···शायद कुछ भी नहीं किया, न अच्छा न बुरा।

पर बड़ी मुश्किल से आयी थी बंसिरी···रंगीले की बात जानकर उसने गेंदा कवि से इनकार कर दिया था, कहा था—'मैं जहर खाऊँगी···मैं भाग जाऊँगी। रात में गला घोंट दूंगी तेरा।' पर गेंदा कवि पुराने घाघ थे, सब जानते थे कि कितनी देर का उफान है··· डेढ़ दिन कोठरी बन्द किये यूँ ही पड़ी घुटती रही, इस गर्मी और अँधेरे में।

और उसी रात पुलिस के एक दीवान जी सराय में आये थे, तब उसने जाना था कि वह क्या है, उसकी क्या हस्ती है। इससे अच्छा

है, उस सरनाम की हिकारत सह लेना···उसके सामने नीची निगाह करके जीवन-भर एक-सहारे जी लेना—कभी कुछ कह न पायेगी··· और कर भी क्या सकती है ?'

दीवान जी ने शहर की पूरी मिल्कियत उसे सौंपते हुए बड़ी इज्जत से कहा—'बेखटके रहिये शहर में, जब तक जाहिद दीवान है तब तक परबंदा पर नहीं मार सकता। मौज कीजिये···वक्त जरूरत याद फरमाइयेगा।' पर उसके मुंह से आती हुई दारू की महक ने उसकी साँस रोक दी थी और सचमुच मुर्दा बंसिरी ने वह रात···तब एक विचार कौंधा था—अपने को बड़ी अफलातून समझता है सरनाम। बेईमान···दगाबाज···इज्जत से खेल गया कमीना ? कैसे-कैसे सब्ज बाग दिखाये मेले में, कितना इन्तजार किया था उसने, दगा देकर भागा था···और आज पहचान कर भी···जब सबने कोठरी में देखा था, तब उसने भी देखा होगा···तब भी दूसरे के हाथ बिकवाकर जलील करना चाहता था। खुद पैसे लगाये थे···और···' जब तक रुपया पूरा नहीं चुका देता तब तक तुम रखो इसे।' इज्जत का ठेकेदार बन गया था। औरत पुकारता था, जैसे उसकी कभी कुछ भी नहीं रही।···औरत। अभी जानता नहीं, औरत कितनी खूंख्वार होती है ? अब औरत उनके ही रहेगी और एक दिन देखेगी उसे···बतायेगी उसे कि वह सिर्फ औरत है।

और उस रात उसने जाहिद दीवान को खुश कर दिया था—कुछ इस तरह उसे घेरने की कोशिश की थी कि वह हाथ में रहे··· चलते-चलते जब उसने कहा था, 'बेखटके रहिए शहर में।' तब उसकी छाती भविष्य में होने वाली जीत के गर्व से फूल आयी थी। वह सरनाम को सिखायेगी, उसे एक सबक देगी···।

पर निडर सरनाम उसकी आँखों के सामने घूम जाता है। बलिष्ठ सरनाम पत्थर की लाट की तरह खड़ा होता है···सीने पर कसी हुई कारतूसों की पेटी, बन्दूक से खिलौने की तरह खेलता हुआ—धाँय···

धाँय···दस-बीस-तीस···धाँय···धाँय···अविचलित सरनाम। खतरे में भी सरदार की लाश को चादर की तरह कंधे पर डाले हुए वह ओझल हो गया था और तब हाथी डुबाऊ तालाब में झम्म। सरनाम नहीं, कोई चट्टान तालाब की छाती पर गिरी थी···गाँव भर गूँज गया था, चार सौ आदमियों का घेरा, पर वह यह गया, वह गया··· रौआँ तक न छू पाया कोई, दिलेर सरनाम।

अँधेरी रातों में घुरघुराते इंजन के ऊपर बैठा सरनाम। खाई-खड्ड···ऊबड़-खाबड़ सड़क···पर उसकी बाँहें हैं कि ट्रक उछलता चला जाता है। उसकी बाँहों की उभरी हुई नसें, पसीने से चिपकी हुई कमीज और थरथराती हुई मांसपेशियाँ—पथरीला शरीर···पिस गयी थी वह···रग-रग निचुड़ गयी थी, हड्डी-हड्डी चटक गयी थी, और उस हड़फूटन का अनिवर्चनीय सुख। कैसे लड़ेगी वह उससे। मन क्यों डूब-डूब जाता है—उस पत्थर के शरीर को संभालने का मन होता है, बनाये रखने को जी करता है। उसे छुए, उस पर हाथ पटके और चट्टानी सीने के नीचे दब कर मर जाये···कुचल कर मर जाए, पर उसे न बिखरने दे। उस चट्टान पर एक खरोंच तक न आने दे।

२३

और यह सब सोच-सोचकर वह पागल हो जाती है। वदहवास-सी इधर उधर ताकती है, अभी-अभी गुस्से में तोड़े हुए मिट्टी के प्याले के टुकड़े बटोर लेती है···कितना बड़ा पागलपन था···वह कभी नहीं तोड़ सकती उसे, और अगर तोड़ा भी तो फिर बटोरने लगी इस तरह ! पर यह होता क्या है ? क्यों वह कुछ तैं नहीं कर पाती ? शायद सरनाम कभी आये···अड्डे पर वह रोज उसे देखती है—टाट का पर्दा हटाकर वह खड़ी देखती रह जाती है···और करे भी क्या ? घर में और कौन है जिसके लिये कुछ करे। पूरे दिन यूं ही जाता है। सौ-पचास बार सरनाम की आंखें मिली हैं और पलक झुकाकर वह या तो इमली की ओट में हो गया या भीतर छप्पर में घुस गया। कभी भर आँख ताका नहीं···ताकेगा किस ताकत से। अपनी गलती महसूस करता है, पर साथ ही उस दिन शाम को रंगीले से कह रहा रहा था इनसे—' जा···जा···घर वाली की हिफाजत कर, कुत्ता दे

जायेगी…' तब उसका मन हुआ था कि जाकर मुँह नोच ले उसका। चमकती आँखों में सूजे भौंक दे। वह बुरी तरह चिढ़ जाती थी। पर रंगीले सरनाम सिंह के बारे में कुछ भी सुनने को तैयार न होता। अकेला शिवराज ऐसा था, जिससे उसकी पटती थी। आदमियों के बीच में रहकर शिवराज किसी नारी की छाँह के लिए तरस जाता… और बंसिरी में उसे सभी रूप एक साथ मिल गये थे, माँ, बहिन और मित्र। शिवराज उमर में छोटा पड़ता, फिर भी वह सब तरह की बातें कर लेता, हर बात बंसिरी से कहता और राय लेता। बंसिरी के लिए भी शिवराज बहुत बड़ा सहारा था, सरनाम के बारे में वह लगातार पूछती रहती और वह बताता रहता।

२४

और सरनाम सिंह अपनी बात खतम करके मंगल के साथ अड्डे पर आया। शिवराज अड्डे पर की खबर लेकर नियमानुसार बंसिरी के पास चला गया। आते ही बोला, 'चाची, आज फिर तैयारी हो रही है—वो मंगल आया है, घर पर सब तै हुआ है, मुझे जबरदस्ती अड्डे की तरफ टरका दिया ···।'

'मेरे पास आने को टोका होगा।' बंसिरी ने सबसे पहले यही बात पूछी, क्योंकि वह जानती थी कि सरनाम शिवराज का उसके पास आना-जाना पसन्द नहीं करता। एक बार उसने रंगीले से भी कहा था—'कुछ मेरा भी खयाल करो···क्या तुमने सब की खुराफातों में साथ देने का पट्टा लिख दिया है। तुम्हारे हरनाम सिंह तो अकेले फकद्दम हैं, पर तुम्हें कुछ हो गया तो मैं कहाँ की रह जाऊँगी।' और उसी रात जब कच्ची शराब की बोतल छुपा कर रंगीले ने घर पर रखी थी, तो उसने तूफान उठा लिया था।

इसी तरह के न जाने कितने झगड़े-टंटे रोज लगे रहते। बंसिरी सरनाम को जरा भी नहीं सह पाती थी। उसकी बात आयी नहीं कि उसकी भौंहें टेढ़ी हुईं। और रंगीले इस कशमकश से परेशान रहता। समझ में नहीं आता कि वह आखिर क्या करे, जो सब कुछ ढर्रे पर आ जाय।

शिवराज ने कहा, 'उनके टोकने से क्या होता है। जहाँ मन होगा जाऊँगा···देखो चाची, उधर देखो···' खिड़की का टाट वाला पर्दा हटाते हुए शिवराज ने मंगल को पहचनवाया था, 'यही आदमी है। पिछली बार भी यही था।'

'कब जा रहे हैं ये लोग।' बंसिरी ने जानना चाहा, पर शिवराज को तारीख नहीं मालूम थी। नीचे अड्डे पर सरनाम सिंह इंजन का हुड खोले कुछ देख-भाल कर रहा था और रंगीले लारी की छत पर सवारियों का सामान चढ़वा रहा था। मंगल पास खड़ा बीड़ी धौंक रहा था। थोड़ी देर बाद लारी छूटने का वक्त हुआ, तो रंगीले दौड़ा-दौड़ा घर आया और छुपाकर रखी हुई बोतलें एक बोरी में लपेट कर फुर्ती से वापस चला गया। भुर्र-भुर्र करके लारी स्टार्ट हुई और धूल का बादल छोड़ कर सीधी सड़क पर लड़खड़ाती हुई चली गयी।

'सुना, दड़े में इस बार घाटा हुआ है।' बंसिरी ने मालूम करना चाहा।

'कल ही चार सौ कमीशन मिले हैं, घाटे का सौदा भैया नहीं करते। पर सुना है इस बार पुलिस पीछे पड़ गयी है। आजकल चोरी-छिपे नम्बर लगते हैं और छिपाकर ही भुगतान होता है।' शिवराज ने कहा तो बंसिरी से न रहा गया, 'तुम आदमी हो रहे हो, पर लड़कपन अभी नहीं गया—मेरी बात मानो शिवराज! जैसे भी हो अपने को अलग कर लो इन लोगों की मण्डली से, पढ़-लिख लिया है, तुम्हें कुछ और करना है। जजी-कलक्टरी में नौकरी तलाश करो···अपने भाई-भौजाइयों को छोड़े पड़े हो···आखिर वे ही काम आयेंगे। कोई

ठिकाना है सरनाम सिंह का ! जिले में रोज नयी वारदात होती हैं, आज यहाँ डकैती तो कल वहाँ कत्ल···इस तरह कब तक खैर मनायेंगे लोग···आखिर एक रोज पकड़े जायेंगे, तब क्या इज्जत रह जायेगी ?'

'मेरा भी मन अब ऊबता है, लेकिन जब तक अपने पैरों न खड़ा हो जाऊँ तब तक तो बड़ी मुश्किल है। मुझे खुद लिहाज लगता है इस तरह रहते, लेकिन अभी कोई रास्ता नहीं···'

'लिहाज की बात करते हो। तुम्हें नहीं मालूम लोग कैसी-कैसी बातें करते हैं तुम्हारे लिए। मेरा सगा भाई होता तो जहर दे देती, पर इस तरह की बात न सुनती···' बंसिरी का इशारा समझ कर शिवराज लज्जित हो गया। शिवराज चुपचाप सुन लेता है। कहे भी क्या ? जब-जब बंसिरी उसे इस तरह धिक्कारती, तब उसका किशोर पौरुष भीतर से हुंकार उठता है, और वह अपने को आदमी महसूस करने लगता है। सचमुच उसे क्या बना रखा है सरनामसिंह ने।

और सरनामसिंह उसे हमेशा सिखाया करता है—'औरत से बड़ी खाई इस दुनिया में नहीं। आम की तरह चूस लेती है। आदमी वही है जो औरत से अपने को बचा जाय। कभी उसके फंदे में न फँसे। अपनी जिन्दगी जीना हो तो औरत को कोसों दूर रखे—तन-बदन, धन-दौलत, ऐश-आराम की दुश्मन है औरत। और फिर ऐसा क्या है जो पैसे से नहीं मिलता···औरत कब धोखा दे देगी, कब प्यार करते-करते तुम्हारी जान की दुश्मन हो जाएगी, कोई ठिकाना नहीं।'

लेकिन शिवराज क बंसिरी की बात ही ज्यादा जंचती है। जब उसके सामने हेम खड़ी हो जाती है, तब सरनाम की सारी बातें बड़ी उथली और बेमानी लगने लगती हैं। सारहीन, बेतुकी। और बंसिरी के पास बैठ कर उसे एक अजीब-सी तृप्ति मिलती है, अद्‌भुत सलोनी-सी अनुभूति होती है—अपने सारे स्नेह के बावजूद बंसिरी कभी-कभी बड़ी रहस्यमयी हो जाती है। वह चाहता है कि बंसिरी के

तन और मन में छुपे गुह्य भेदों को जान सके···उसके तन को वह देखता रह जाता। तरह-तरह की कल्पनाएँ करता। और बंसिरी के तन के एक-एक रूपाकार की कल्पना से वह हेम के शरीर का अनुमान लगाता है।

कई बार वह हेम के विषय में बताते-बताते रुक गया, पर एक रोज जब सरनाम ने उसे लड़कियों के पीछे घूमने की हरकत पर डाँटा तो वह आया था और हिचकते-हिचकते बंसिरी को सब कुछ बता दिया था, उस दिन से बंसिरी ने उसे और भी सहारा दिया था। और सचमुच बंसिरी इस बात से दुखी होती थी कि सरनाम अपनी बिगड़ी हुई आदतों के कारण शिवराज को बिगाड़े डाल रहा है। उसकी स्वाभाविक गति को रोके हुए है,···उसे गलत रास्ते पर डाल रहा है। जब भी मौका मिलता है, वह शिवराज को ताने दिया करती, उकसाती और उसे अहसास कराती कि उसकी दशा एक गई-गुजरी औरत से भी बदतर है। और वह बड़े गौर से देखती रहती कि शिवराज में स्वतन्त्रता के गुण आते जा रहे हैं। शौकीनी बढ़ती जा रही है···आज भी उसने शिवराज को तर्जनी में अंगूठी पहने देखा तो कटाक्ष कर बैठी—'ये लड़कियों की तरह क्या अंगूठी पहन रखी है···छंगुनी के नाखून पर नेलपालिस देखी, तो चाकू लेकर छुटाने बैठ गयी···तुम लड़की हो जाओ शिवराज।' और इससे पहले कि बंसिरी चाकू से उसे हटाये, उसने खुद अपने दांतों से उसे खरौंच डाला।

बात करते-करते बंसिरी अपने गाँव के जवानों के किस्से लेकर बैठ गयी···'बड़ा बाँका जवान था अद्दा! तेल-फुलेल नहीं, मिट्टी से रचा रहता था। गाँव भर की लड़कियाँ जान देती थीं उस पर—शेर की तरह घूमता था खेत-खलिहानों में। नीम वाले सैयद बाबा की दाढ़ी नोच लाया था, तब से गाँव के सैयद बाबा को किसी ने नहीं देखा···लोगों ने कहा, 'अब खिला-खिला के मार डालेगा!' पर अद्दा हट्टा-कट्टा घूमता रहा। बाल बाँका नहीं हुआ उसका।'

बंसिरी जब ऐसी बातें सुनाती, तो शिवराज अपने में सिमट जाता। उसे पछतावा होता कि क्यों हेम के बारे में वह सब कुछ बता गया। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करके वह उठता। सराय में होटल पर खाना खाता और बाजामास्टर के पास जा बैठता। या शाम को घूमता-घामता अड्डे पर आ बैठता···आजकल हेम कहीं किसी रिश्ते-दार के यहाँ कुछ दिनों के लिए बाहर गई हुई थी। अड्डे पर खासा मजमा रहता। मोटर की छतों पर ड्राइवर और क्लीनर गद्दियाँ बिछा-बिछा कर मोमबत्तियों के सहारे फ्लश खेलने में मशगूल रहते। या किसी मोटर की छत पर किसी विरही ड्राइवर, क्लीनर या कमीशन एजेन्ट का किस्सा छिड़ा होता और ऊँची आवाज में गाना चलता—

'गोरी मोहे जमना के पार मिलना···'

गाता एक, पर ताल सब देते और फ्लश खेलते लोगों की गर्दनें भी उसकी ताल पर झूमती रहतीं। आखिर मोटर आने तक अड्डे पर जगहर रहती थी, उसके बाद नशे में धुत् लोग इस तरह सोते जैसे साँप सूंघ गया हो।

दूर सड़क पर आती हुई लारी की रोशनी चमक उठी! अड्डे में थोड़ी जान आयी। पर ज्यादातर लोग अपने सोने का इन्तजाम कर रहे थे। मंगल फ्री स्कूल की कार्निस पर इन्तजार में बैठा था। मोटर रुकते ही सरनाम के पास पहुँचा। उसका पारा चढ़ा हुआ था। रंगीले सवारियों का सामान उतारने के लिए ऊपर छत पर चढ़ गया।

हाथ झाड़ते हुए, थकन से चूर सरनाम जाकर तख्त पर बैठ गया।

शिवराज को आज अकस्मात अड्डे पर देखकर आश्चर्य हुआ, बोला, 'क्यों,—कोई बात है?' शिवराज ने कहा यूँ ही चला आया तो सर-नाम को थोड़ी खुशी हुई। उसे लेकर वह होटल को चल दिया। रास्ते में बोला, 'आज कितने दिन बाद तुम्हें हमारे साथ खाने की फुर्सत मिली है!' सुनकर शिवराज चुप रहा। होटल में पहुँचा तो डा० लालचन्द जमे हुए थे। सरनाम इन्हें पहचानता था, इसलिए कि वे

खद्दर पहनते थे और सन बयालीस के बाद जब वह लड़ाई से वापस आया था, तो लोग इन्हें नेताजी-नेताजी कहकर पुकारते थे ! बीच में डा० लालचन्द कहाँ रहे यह कोई नहीं जानता । डा० लालचन्द ने सरनाम को देखते ही पुकारा, 'कहिए सरनामसिंह जी क्या हाल है ?'

'सब ठीक है डाक्टर साहब !' कहकर वह खाने के लिए जा ही रहा था कि डा० लालचन्द ने कहा, 'आपसे मिलना था मुझे, यहीं मुलाकात हो गयी···' और उन्होंने अपनी योजना सरनाम के सामने पेश कर दी—'शहर में चार अड्डे हैं । कम से कम तीस ड्राइवर और इतने ही क्लीनर होंगे, और बाकि काम करने वाले मिलाकर सौ सवा-सौ के करीब हो जायेंगे । इतनी बड़ी ताकत के होते हुए हमारे जिले में एक भी मोटर यूनियन नहीं । आप सब लोगों के सहयोग से एक कर्मचारी यूनियन बन जाय, मोटर मालिक-यूनियन मालिकों ने अपने स्वार्थों के लिए बना रखी है, लेकिन असली काम करने वाले बिखरे हुए हैं । जितना काम लिया जाता है, उतना पैसा नहीं मिलता । नौकरी की मुस्तकिली का कोई ठिकाना नहीं । जब जिसे जी चाहता है, मालिक निकाल बाहर करता है···सच पूछिए तो मजदूर और मालिक का झगड़ा हर जगह, हर स्थिति में है । मुश्किल यह है कि मजदूर संगठित नहीं होते, इसीलिए उनका शोषण होता है ! वे नहीं जानते कि उनकी लड़ाई क्या है ? कहाँ है ?'

'यह सब मैं नहीं जानता । मैं आदमी—मजदूर आदमी की लड़ाई हमेशा दूसरी जगह देखता हूँ—जिस लड़ाई की ओर आपका ध्यान है वह फैक्टरियों से भरे कानपुर, बम्बई या अहमदाबाद में हो सकती है यहाँ नहीं । यहाँ सब जीने के लिए मर रहे हैं । मालिक और मजदूर, वकील और मुहर्रिर, दुकानदार और नौकर—सभी एक नाव में हैं, और उस नाव के चारों ओर एक तरह का तूफान उमड़ रहा है !' सरनाम ने तलखी से कहा ।

'ठाकुर साहब ! असल में लड़ाई की बात···' बीच ही में डा०

लालचन्द की बात सरनाम ने काट दी 'इन धर्म मंडलियों से लड़िए डाक्टर साहब, जो यहाँ के मजदूरों को सोचने-समझने का मौका नहीं देतीं, इन ओझा और पाखण्डियों से लडिए जो मजदूर के पसीने की कमाई चाट जाते हैं। ऊँची जात के लोगों से लड़िये जो आदमी नहीं बनने देते। मंडी वालों से लड़िए जो मुनाफे के लिए बरसात में गल्ले को गोदामों में बन्द करके बाहर भेजने के लिए रोक रखते हैं। जिला बोर्ड, चुंगी के अफसरों से लड़िए जो बदमाशी करते हैं।'

इससे पहले कि डा० लालचन्द कुछ बोलें, कुछ रुककर सरनाम कहता ही गया—'आँखें खोलकर देखिए डाक्टर साहब ! लड़ाई कहाँ है ? हर गली वीरान है इसकी···हर गली में धूल उड़ रही है, हर गली अन्धेरी और सुनसान पड़ी है। हर गली में इन लड़ाइयों के मुकाम हैं।'

डा० लालचन्द अवाक् सुनते रह गए, मन में आया कहें, 'ठाकुर सरनामसिंह जी और आपकी जिन्दगी ?' पर सरनाम की आँखों में जो आग धधक रही थी, उसकी आँच ने उनका सारा साहस भस्म कर दिया, लेकिन कहीं मन में अपने स्वयं के खोखलेपन से घबरा उठे··· लगा, कितने बड़े झूठ में वे जी रहे हैं···सचमुच इस बस्ती का संघर्ष उस किताबी संघर्ष से कितना अलग है। डा० लालचन्द अपने खयालों में डूबे हुए थे, तभी सरनाम का स्वर फिर उनके कानों में पड़ा··· ऐसा स्वर जो किसी पवित्र आत्मा के मुँह से फूट रहा हो—'और मुझे ही देखिए डाक्टर साहब। क्या मैं नहीं जानता कि मैं खुद क्या हूँ ?' या आप मेरी असलियत जानते होंगे। लेकिन आप मेरे मुँह पर कह नहीं सकते। क्यों, इसे आप भी जानते है और मैं भी···लेकिन मैं जो कुछ हूँ, उसके लिए सिर्फ मुझे अफसोस हो सकता है, ऐसा कुछ भी नहीं, जिस पर दुनिया अफसोस कर सके। एक आदमी के नाते मैं बुरा भी हूँ—पर सिर्फ अपने लिए···मेरी बुराइयाँ दूसरों को बुरा नहीं कर सकतीं, क्योंकि मैं अकेला होकर जीता हूँ। लेकिन जो सबके लिए

जीते हैं···जो यह कहते हैं कि वे दूसरों के लिए जी रहे हैं, उनकी बुराइयाँ छूत के रोग की तरह फैलकर तबाह कर देती हैं। इस तबाही को रोकने के बाद ही एक-एक आदमी को सम्भाला जा सकता है।'

'लेकिन भाई ! जब तक आदमी खुद अपनी बुराइयाँ दूर नहीं करता तब तक···' डा० लालचन्द कह ही रहे थे कि सरनाम ने बात काट दी। शिवराज लगातार उसे ताके जा रहा था। उसके मन से सारी ग्लानि जैसे धीरे-धीरे बहती जा रही थी।

डाक्टर लालचन्द हाथ धोने के लिए उठे तो सरनाम ने कहा, 'आप मिलिये गा डाक्टर साहब, वहीं अड्डे पर ज्यादातर रहता हूँ।'

होटल से घर तक रास्ता खामोशी के बीच कट गया। शिवराज अपनी खाट बिछा कर सरनाम का बिस्तर लगाने लगा। सरनाम ने देखा, पर कुछ बोला नहीं। शिवराज ने नया काम किया था। कपड़े उतार कर सरनाम कमरे में घुस गया। बोतल खुलने की आवाज़ शिवराज ने सुनी थी···कई बार आँख खुलीं पर सरनाम बिस्तर पर नहीं दिखाई पड़ा। कमरे में वालटेन की हल्की रोशनी थी···सरनाम पीते-पीते लस्त होकर दीवार के कोने से सिर ठिकाए धुत्त पड़ा था। बोतलें और गिलास पास लुढ़क रहे थे। शिवराज भयभीत-सा देखता रह गया। बड़ी मुश्किल से रात गुजरी···वह समझ नहीं पाया कि यह कौन-सा सरनाम था। वह इसे प्यार करे या घृणा···

२५

सवेरे ही शराब की बोतलों के लिए मंगल आ गया। सतनाम और मंगल जब अड्डे की तरफ चले, तब धूप काफी निखर चुकी थी। रंगीले का पता लगाया गया, पर वह लापता था। इधर-उधर पूछने से पता लगा कि रंगीले किसी की मिट्टी में गया है।

अगले चौराहे पर हंगामा सुनकर उधर देखा तो एक अर्थी चली आ रही थी। हाथ-डेढ़-हाथ की अर्थी, आगे रंगीले उठाये था, पीछे बिरजू। शव पर लाल अबीरी कपड़ा था और छोटी-सी अर्थी में झंडियाँ वगैरह लगी थीं। आगे-आगे बाजे वाले किसी फिल्मी गीत की धुन बजाते हुए चले आ रहे थे।

चन्दे के लिये अर्थी अड्डे पर रोक ली गई।

'कैसा चन्दा!'

अर्थी उतार कर रंगीले ने बताया,'बानर भगवान स्वर्गलोक सिधारे हैं···मन भर लकड़ी काफी होगी। अर्थी के जलूस में शामिल होने

वालों के माथे पर महावीरी टीका लगा था। असलियत जानकर मंगल बिगड़ा, 'बन्दरों को मुर्दघाट पहुँचाते रहोगे कि उसका इन्तजाम होगा।

'आज जजी-कचहरी में गवाही के लिए हाजिर होना है, श्मशान से नहा-धोकर उधर जाना है, शाम तक या कल तुम्हारा सामान आ जावेगा।' रंगीले ने कहते हुए बाजे वालों को इशारा किया और अर्थी मुर्दघाट की ओर चली गई।

२६

शिवराज पिछले कई महीनों से बहुत भावुक होता जा रहा था। हेम की शादी तय हो गई थी। उसे लगता था जैसे वह एक अत्याचारी समाज के बीच आ गया है। उम्र अभी अट्ठारह की होगी, पर न जीवन का उछाह न उद्दण्डता। रह-रह कर अनजान चेहरों की याद सताया करती···मन करता, किसी स्वप्नलोक में उड़ जाय, ऐसा लोक जहाँ कोई न हो···वह हो और उसकी कल्पना। दूर कहीं बजते ग्रामोफोन से गीत का स्वर आ रहा ···'जब तुम्हीं चले परदेस लगाकर ठेस ओ प्रतीम प्यारा।' उसकी आँखें भर-भर आती हैं···और हेम सदा-सदा के लिए जैसे पराई होकर चली जाती है। और शिवराज उस भविष्य के दुःख और विरह की कल्पना में सोचता है···अब तुम्हारी सुध को प्यार करूंगा रानी। सुधि तो नहीं छीन सकता यह क्रूर समाज···और वह रात-रात भर रो-रो कर गीत की पंक्तियाँ जोड़ता हरता है, बार-बार वही ग्रामोफोन का गीत उसकी स्मृति में आकर

उलझता है और उसके भग्न हृदय से पुकार फूटती है…'तू मेरा दुःख जान नहीं सकती।

सम्भव सुख के अश्रु समझ ले।
मगर समझ दुख गान न सकती।

रात भर वह सो नहीं पाया और हेम के विवाह की काल्पनिक बातें उसे कचोटती रहीं, पर कविता बन गई थी। आज वह समझ पाया था कि कविता के लिए विरह की क्या महत्ता थी।

आखिर बड़ा भरा हुआ दिल लेकर हेम को पत्र लिखने बैठ गया।

'हृदय की रानी हेम !

निठुर नियति के हाथों बार-बार प्रताड़ित होने पर भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ता…सुना तुम्हारा विवाह तय हो गया है…यह दैव-दुर्विपाक ही है मेरी रानी। मेरे आँसू नहीं थमते। मेरे हृदय को तुमने कभी समझा ही नहीं, जो तृप्त होते हुए अतृप्त था, उसमें शायद अब भी पिपासा है जो आमरण शान्त न हो सकेगी…तुमने तो आशाओं पर निराशा की काली चादर डाल दी। तुम्हें भी किसी शलभ को अपने जीवन-दीप की आंच से जलाने की खूब सूझी और सफल भी हुई, अतएव उस शलभ की बधाई स्वीकार करो। एक प्रार्थना है, भूलना मत उस शलभ को, जिसने अपने अरमानों को चिता में आग लगा दी…

महरूम तरब है दिले दिलगीर अभी तक,
बाकी है तेरे इश्क की तासीर अभी तक।

और मेरी रानी, यह मेरी कविता लो…टूटे हुए दिल की पुकार सुन पाओ तो सुनना…तू मेरा दुख जान न सकी।

सम्भव सुख के अश्रु समझ ले
मगर समझ दुख गान न सकती। तू…
इस जीवन की और न आशा
लौट रहा प्यासा का प्यासा

करा मुझे विषपान जो सकी । तू···

अभागा···शिवराज

पत्र को जेब में डालकर शिवराज सीधा बाजामास्टर के पास पहुंचा। बाजामास्टर कुछ लोगों के साथ बैठ अपने भावी कार्यक्रम के बारे में बातें कर रहे थे—नाटक होकर रहेगा। पर चन्दा कैसे जमा होगा, स्टेज कैसे बनेगा और सारा इन्तजाम कैसे किया जाय। बात करते समय उनका चेहरा एकबारगी चमक कर बुझ जाता···। शिवराज उदास-सा उनके पास बैठ गया। रुक-रुककर अपनी बातें सुनाता रहा, तो बाजामास्टर ने सुझाया···'चलो कार्निवल की तरफ चलें कुछ मन बहल जायेगा, मेरा मन भी बहुत ऊबता है···'

शहर में कार्निवल को आये दो तीन दिन हुए थे। एक तरफ सरकस था, एक तरफ़ जुए का अड्डा और एक तरफ जिन्दा नाचगाना। न जाने क्यों जब से शिवराज का प्रेम टूटा था, वह अपने का आदमी समझने लग गया था···एक बेपरवाह भूला-भूला-सा बिगड़ा हुआ आदमी···बड़ी खुली आवाज में, निःसंकोच भाव से बाजामास्टर से बोला ···'चलो एकाध दांव आजमाया जाय, जीत गए तो नाच देखेंगे···'

'एक नाचने वाली से मेरी जान-पहचान है, कमला नाम है उसका मिलोगे उससे।' बाजामास्टर ने पूछा।

'किसी से भी मिलवा दो मास्टर, गम भूल जाऊँ···बस।' बड़ टूटे हुए दिल से शिवराज ने कहा और वे दोनों नम्बर लगाने के लिए जुए की मेज़ों की ओर बढ़ गए···

एक नई दुनिया का नक्शा उसके सामने खुल गया···वह भरमाया भूला देखता रह गया···सरनाम का चला जाना जैसे उसके लिए वरदान बन गया···वह मुक्त था, निर्बंध।

२७

बंसिरी बेहद परेशान थी इधर, शिवराज भी कई दिनों से नहीं आया। सरनाम भी अड्डे पर नहीं दिखाई दिया, न जाने कैसी बात थी···जब वह आँखों के सामने होता, उसका होना अनुभव में होता तो प्रतिहिंसा धधकती रहती और आँख-ओट होते ही व्याकुलता-भरी छटपटाहट कुरेदने लगती। न उसका जीना सह पाती थी, न मरना। जब-जब वह इस तरह ओझल होता, तो उस एकाकी व्यक्ति की एकातिक व्यथा और दुखों को गोपनीयता दिल में कसक-कसक जाती··· चंचल सम्मोहन-सा रबर की तरह खिचता और उसके आते ही जब वह रबर एकाएक छूट कर चपेट मार जाती, तो मन बौखला उठता ···न जाने वह कहाँ होगा ?···किसी बीहड़ जंगल में···काली नदी या चम्बल के भीटों में···किसी अस्पताल में या न जाने शायद··· किसी बन्जर-वीरान ऊसर में उसका निर्जीव शरीर···जीभ दाँतों से कट जाती है···'हे देवी ! उसकी कुशल तेरे हाथ है माई। उसने किसी

का क्या बिगड़ा है खुद बिगड़ गया माई। दया करना···उसे क्षमा करना, सब पापों का बदला इस तन से ले-ले दयावती।' मुंदी आँखों से आँसू झरने लगते हैं। किसके लिए जिए वह। परछाईं का सहारा है मेरे भगवान्! उसकी कुशलता की ओट यह बिरवा पनपा है। रंगीले पर आया हुआ सारा गुस्सा खत्म हो जाता है, मन करता उसे ही मन से चाह ले, यह उसके पास उठते बैठते हैं, उसकी बातें करते हैं ···कितने भाग्यवान हैं ये कि उसका दुख-सुख जानने के भागीदार हैं ···सचमुच किसी के दुखों का भागीदार बन सकने में कितनी तृप्ति मिलती है। जब आदमी आदमी की पीड़ाओं को एकाएक होकर सुनता और अनुभव करता है, तो न जाने किन ऊँचाइयों पर पहुँच कर सुनहली भावनाओं से भर जाता है···व्यथा न जाने कितने रँगों में फूट-फूट कर सम्मोहित कर लेती है···व्यथा का सन्तोष सार्थकता दे जाता और जीवन की उपयोगिता उजागर होकर दिग्-दिगन्त में व्याप्त हो जाती है। किसी व्यथित-पीड़ित के अन्तरवासी रहस्यों को जानकर अपने अस्तित्व का गौरव जागता है। वह सन्तोष, वह सम्मोहन और उस गौरव का भोक्ता कोई बन पाये, तब न। उसने तो अपने से ऐसा काट दिया कि जुड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता, और जिससे जोड़ा··· वह···

वह इमली वाले चौराहे पर चरही बनवाने में मशगूल था···'य जानवर भटकते फिरते हैं···इन्हें प्यास नहीं लगती क्या?' लदे हुए गदहों की पीठ से ईंट उतरवाते हुए रँगीले कह रहा है···'अब से गोपाष्टमी पर कंस के मैदान में जानवरों का मेला लगेगा···बिरजभूम की गइयाँ मैला खाती फिरती हैं, खत्ताखानों में मुँह डालती फिरती हैं···'

'चुंगी की जमीन है, पूछ-ताछ भी लिया है।' खिन्नी के पेड़ के नीचे हाल कूटते हुए लुहार ने जानना चाहा।

'ये जो कांग्रेस का झण्डा बीच चौराहे पर चौंतरा बनाकर गाड़ा गया है इसके लिए भी किसी ने पूछा था।' रंगीले जानता था कि

चतुरी लुहार कांग्रेस वालों के साथ उठता-बैठता है। चुनाव के जमाने में दो बैल वाला बिल्ला लगा कर दौड़-धूप कर रहा था।

'वो तो देश का झण्डा है, देश का काम करने वाले नेता लोगों ने गड़वाया है···

'तो ये भी देश का काम है। जानवर मर जाएँगे तो आदमी भी नहीं बचेंगे। गऊमाता के सींग पर पृथ्वी सधी है इसको तुम्हारे नेता लोग भूल गये हैं···' रंगीले ने गौव से व्यंग्य करते हुए कहा।

मठिया की मूर्ति के पास बैठे बाबाजी ने चरस की लपट उठाते हुए साथ दिया···'ज्ञान की बात है बच्चा। लेउ रंगीले बच्चा, दम मार के काम करो···अहा हा···लपट उटी है कि मशाल जगी है···'

गदहों की पीठ पर लदी ईटों का चट्टा लगता रहा, एक दम मार कर रंगीले ने चतुरी लुहार को सुनाया···'पक्षी-जानवर के लिए मन से प्यार-स्नेह उठ गया इसीलिये आफत टूट पड़ी। रामजी ने जटाऊ को गले लगाया था···शहर भर में घोड़ा-बैल को पानी नसीब नहीं होना। यहाँ इमली की छांह में मुस्तायेंगे और पानी पिएँगे···चुंगी क्या करेगी, हम कोई अपना घर बनवा रहे हैं या छाती पर जमीन ले जा रहे हैं।'

कांग्रेसियों के साथ उठने-बैठने से चतुरी पैंतरे से बात करना सीख गया था—'इतना दया धर्म अहिंसा की बात है, और जब आदमी अहिंसा करेगा तब उसे डरना नहीं चाहिए। और आदमी डरेगा नहीं तो जीतेगा···और जीत तुम्हारी नहीं सत्त की होगी।' चतुरी लुहार ने कस्बे के कांग्रेसी नेताओं का लहजा कुछ ऐसा पकड़ा था कि अहिंसा डर, जीत और सत उसकी हर बात में दखल जमा लेते थे और जुबान एक बात दूसरे से जोड़ती जाती थी कि लगता था, दर्शन समझा रहा है। पर मन ही मन वह इस ताड़ में था कि कैसे वह चुंगी वालों तक इसकी खबर पहुँचा दे, क्योंकि यही जमीन वह अपने साले के रोजगार के लिए प्राप्त नहीं कर पाया था। मिस्त्री साहब के आते ही बातचीत

का सिलसिला टूट गया।

बेचू मिस्त्री पाँचों तहसीलों में मशहूर है—कानून से लड़ना जानते हैं—यही खास पेशा है। लड़ाई-झगड़े की इमारतें बनवाने और खसाने में इन्हें ही याद किया जाता है। किसी की जमीन दबाना हो, बेचू मिस्त्री रातों-रात चहारदीवार खड़ी कर देने का दावा रखते हैं। सरकारी जमीन पर कुआँ मन्दिर, धर्मशाला खड़ी कर देना बायें हाथ का खेल है, विश्वकर्मा के वंशज हैं।

जमीन नापकर चरही बन गई रातों-रात। सवेरे लोगों ने देखा तो कुछ ने बनवाने वाले को शाबाशी दी, कुछ ने नाक-भौं सिकोड़ी। प्लास्टर अभी गीला था इसीलिए रंगीले दिन-भर देखभाल के लिए तैनात रहा। और उसके बाद रंगीले के लिए एक काम और बढ़ गया—चरही को भरना ठट्ठा नहीं था। कुएँ से पानी खींचना। पचास कनस्तर पानी पड़ता था, पर कोई दिन ऐसा नहीं गया जब पानी न भरा गया हो। कुएँ की चरखी सवेरे-सवेरे खड़खड़ाती तो जरूर होती—रंगीले चरही भरने आये हैं। लस्त हो जाता वह, बाँहों की नस फूल आतीं, पेट धौंकनी की तरह भलता पर खड़···खड़ खड़ खड़र···खड़र···किसी पुराने भजन की एक पाँत या फिर गाँधी जी का वह प्रिय गीत—'उठ जाग मुसाफिर भोर भयी अब रैन कहाँ जो सोवत है···' बड़ा प्रिय था रंगीले को यह गीत।

चरही भरकर कपोए हुए हाथ चिरचिरा उठते और जब वह मठिया पर बैठकर चिलम की दम लगाता तो साँस बैठती। पर उन क्षणों का सन्तोष—जब कचहरी तक की लम्बी दौड़ लगाकर, मुँह से फेन टपकाते घोड़े चरही में मुँह घुसेड़ देते या सड़कों पर घूमती गाय पानी पीकर वहीं सुस्तातीं या मंडी के लिए गाड़ियाँ ढोने वाले बैल हाँफकर पानी पीते···तो उसकी आँखों में बच्चों की तरह भोलापन उभर आता, मुँह ऐसा खुल जाता कि चेहरे पर सैकड़ों झुर्रियाँ पड़कर उसकी उम्र दूनी कर जातीं।

२८

···दड़े वाले कमीशन एजेन्ट इधर कई दिनों से सरनामसिंह की पूछ-ताछ कर रहे थे, पर रंगीले क्या उत्तर देता ? कैसे बताये कि कहाँ गया है, जब पाँच रोज हो गये तो उसे चिन्ता भी हुई, आखिर हुआ क्या ? मोटर मालिक से तो कह गया हैं—रिश्तेदारी में जा रहा हूँ—तीन दिन बाद वापस आ जाऊँगा। पर अभी तक ··कहीं कुछ हो गया तो···और कौन ठिकाना—हिस्सा-बाँट में कहीं आपस में ही··· पर सरनाम ऐसा-वैसा नहीं, बाल बाँका नहीं हो सकता उसका। शिवराज का रंग-ढंग भी वह परख रहा था। कार्नीवल वाली पतुरिया के डेरे में पड़ा रहता है···कल पौडर खरीद रहा था···उसी के लिए ख़रीदता होगा···छैला हो रहा है। अभी क्या हुआ— जूती गठवायेगा···

बंसिरी कैसे सहन करती यह सब, उसने कहा, 'उसे पकड़ लाओ इधर, मैं समझा दूंगी।'

'मेरे बस का नहीं है वह लड़का। नाच-गाने में जी लगता है उसका।'

'तुम कह देना मैंने बुलाया है। नाच गाने में जी लगाने का दोष तो तुम्हारे सिंह जी का है। कौन-सा ऐसा करम है जो बाकी बचा है उनसे। किसी दिन दड़ा पकड़ा गया तो जेल में सड़ेंगे···'

'तुम्हारी तो हर बात निराली होती है, हर दोष सरनामसिंह के सर। जो कुछ दुनिया में बुरा होता है, सब उसी की करनी है।'

'शिवराज को और किसने बिगाड़ा है ? उसके घर वालों से जुदा कर दिया, आश्रम से भगा लाया है और उसे मेहरा बना के···'

'तुमको इससे क्या ? वह करता है तो करे।'

'पर एक की जिन्दगी बिगाड़ दे। कैसा प्यारा लड़का है, पर ढकेल दिया उसे भी कीचड़ में। अभी क्या है, डाकू बनाकर दम लेगा।'

'बंसिरी।' रंगीले ने कुछ क्रोध में कहा।

तभी एकाएक बाहर से आवाज सुनाई पड़ी—'रंगी, रंगी।' सरनाम की आवाज थी। बंसिरी का पारा एकदम चढ़ गया। कान सतर करके एक-एक बात गौर से सुनती रही और जब रंगीले त्रिपाल के एक टुकड़े में लपेटे हुए हथियार भीतर छुपाने के लिए लाया तो वह बिफर उठी—'ये यहाँ नहीं रखे जायेंगे। चाहे भगवान उतर आयें पर मैं कहती हूँ इन्हें ले जाओ···नहीं मानोगे तो मैं निकाल कर फेंक दूंगी और सब बता दूंगी···

रंगीले को बातें चुभ रही थीं, सरनाम बरौठे में खड़ा सुन रहा होगा, क्या सोचेगा—औरत भी डाँट कर नहीं रखी जाती। और वह भी बंसिरी को ऐसा नहीं समझता था। मुसीबत के समय तो उलझेटा नहीं डालना चाहिये इसे। देखती नहीं, मिनट भर में क्या से क्या हो सकता है। रंगीले के आते ही सरनाम बिगड़ पड़ा—'बहुत सर चढ़ा लिया है तुमने इसे, वरना औरत की मजाल है कि इस तरह···'

काली माई का रूप धारण किये बंसरी सारी शरम-लिहाज छोड़-

कर सामने आ गई, सरनाम पर आँख पड़ते ही प्रतिहिंसा की ज्वाला में उसका रोम-रोम झुलस उठा—डकैती तुम करो, खतरा हम उठायें…'

'धीरे बोल…धीरे।' सरनाम ने हिकारत से कहा, जैसे अभी हुकुमअदूली पर गला ही दाब देगा, उसकी आँखों से चिनगारियाँ फूट रही थीं—'चुप होके बैठ भीतर। कहीं ब्याहता होती तो अब तक चबा गई होती…' मुँह में आये हुए कड़वे थूक को निगल न पाने के कारण उसने वहीं थूक दिया। रंगीले भौंचका-सा हतबुद्धि की भाँति बस देखता भर रहा।

'थूक तू अपनी करनी पर। अपने करमों पर चण्डाल। डाकू। लुटेरा…' न जाने कितनी गालियाँ बंसिरी के मुँह से निकलती चली गईं और आग बरसाती आखों से सरनाम ने रंगीले की तरफ देखा। एक ही झपाटे में रंगीले बंसिरी को लेता हुआ भीतर चला गया। सरनाम नाजुक वक्त जानकर एकदम बाहर निकलकर अड्डे की तरफ चला गया।

गुजरते हुए चतुरी लुहार ने ठिठककर एक मिनट तक माजरा समझने की कोशिश की। सरनाम को अँधड़ की तरह जाते हुए देखकर सहम गया, जैराम करने की सुध भी नहीं रही। पर बंसिरी की चीखें सुनने के लिए वह कान लगाये खड़ा ही रहा…जब बातें धीमी पड़ गयीं तो वह अपने महल्ले की तरफ चला गया।

…कोतवाली में दूसरे दिन डकैती की रपट के साथ-साथ सरनामसिंह फरार हो गया। शिवराज से वह थोड़ी देर के लिए मिल पाया था, कुछ रुपये देकर चला गया था, फिर पता नहीं किधर गया।

शहर में सनसनी थी, और रंगीले का कलेजा भीतर-ही-भीतर काँप रहा था, अब क्या होगा? सरनाम इतना ही बता पाया था उसे—'महूरत बिगड़ गया, जिस जगह का तै था वहाँ कुछ भी नहीं हो पाया। भेदिया दगा दे गया…उस साले से निबटना है। पकड़वाने

के सारे इन्तजाम थे, वह तो कहो किस्मत थी कि ऐन वक्त फरेब सूंघ लिया, नहीं तो दो-एक की जान जाती और बाकी पुलिस की गिरफ्त में आते। दो दिन ढाक के जंगल में भूखे-प्यासे पड़े रहे। वापसी पर चलते-चलाते दूसरी जगह मौका लगा, खर्चा तो निकालना ही था। पाँच सौ पर रायफल आयी थी और दो-दो सौ ऊपर शेर के शिकार में गीदड़ मारना पड़ा। पर वह भी नहीं मारा साला, चार सौ कुल मिले, वह भी एक की बाँह तोड़कर···हथियार सँभालकर रखना, मैं जाऊँगा, मुकदमा चलने दो। वारन्ट से पकड़ा गया तो बड़ी दुर्गत करेगी पुलिस। गिरफ़्तारियाँ हो जाएँ तो खुद जाकर कोर्ट में हाजिर हो जाऊँगा, फिकर मत करना···'

२६

शिवराज इधर एकदम खुद मुख्तार हो गया। बंसिरी के पास भी नहीं आता। बाजामास्टर के साथ नाटक कम्पनी के निर्माण के लिए वहशियों की तरह घूमता है, रात-रात भर कुप्पी के प्रकाश में उसके साथ बैठकर 'वीर अभिमन्यु' नाटक का मसौदा देखता है, संवाद लिखता है और राधेश्यामी तर्ज में गीत बनाता है। 'मास्टर यह गीत —तुम्हारा हरमुनियम और कमला का गला···इधर युद्धवेष में जाने को तैयार अभिमन्यु और इधर उत्तरा का यह दर्दभरा गीत।' और तब उसकी आँखों के सामने चित्र उभरता है—अभिमन्यु ही तो है वह और कमला आँखों में आँसू भरे उसे विदाई दे रही है, जाओ प्राणनाथ, जाओ···क्षत्राणी का यह कर्त्तव्य नहीं कि वह योद्धा को आँसू की जंजीरों में बाँध ले। और वह चला जाता है, व्यूह भेदने। सचमुच, कितने व्यूह। उन्हें वह भेदेगा···अभिमन्यु की तरह, वीर की तरह··· उत्तरा की अश्रुपुलकित आँखों का आशीर्वाद लेकर। बड़ी हसरत थी

मन में, एक बार यह नाटक हो पाता···शायद यही उसके जीवन का पुण्य है—वही वह राह है, जिसके लिए वह भटक रहा था। बाजा-मास्टर की बातें उसे कभी जागृत न कर पायीं, पर कमला ने उस दिन कहा था—'तुम मेरे साथ स्टेज पर उतरो तो मास्टर की कम्पनी में चली आऊँ।'

सोलह बरस की लड़की, पर कैसी बात करती है, जैसे सब देख-समझ चुकी हो। कहती थी—'इस कार्नीवल में क्या रखा है शिवराज, मैं तार पर नाचने वाली लड़की हूँ। यह पतला-सा तार और हर पल डगमगाते हुए कदम···कब तक साध पाऊँगी अपने को। आखिर एक दिन···एक दिन यही तमाशा करते-करते नीचे आ गिरूँगी। सत्तार को गेंद उछालते देखा है, दस-दस, बीस-बीस गेंदें उछालता है एक साथ। कितना बड़ा जादू है। है न? और वे रंगीन गेंदें। उछलती रहती हैं···मैं तार पर चलती रहती हूँ···'

'ब्याह करके घर बसा लो।' शिवराज ने मजाक किया था।

'तुम करोगे?' जैसे एकाएक हवा का झोंका पाकर घुटती हुई साँस क्षण-भर के लिए उन्मुक्त हो जाय। पर सहसा उसकी व्यर्थता का बोध करते ही कमला ने हूँ करके बात को मजाक का जामा पहना दिया था। पर वह क्षण-भर पहले की चमक उसकी आँखों में तैरती रही थी···बाजामास्टर वह चमक देखकर एकाएक घबरा गया था—आँखों की यह दीप्ति। अचरज-भरी, उत्कंठा भरी, प्यास भरी, पर कितनी उदास। हसरत की ऐसी चमक·· सोलह बरस की अभागी कमला। शोखी से झिड़क देने के आँखों के ये दिन। जैसे तिरस्कृत जीवन की खोई हुई कामना के दिवस माँगते हों। उफ्! यह क्षण भर की चमक उसे मार जायेगी, इसे भूल जा कमला···लीला याद आती है। वह भी कामना करती थी, ऐसे ही चमकती थीं उसकी आँखें··· अपना खोया हुआ कुछ माँगती थीं। तू न माँग, उस लाचारी की तस्वीर न खींच। नहीं तो कुछ नहीं कर पाऊँगा मैं? तू तार पर

चल···तू उत्तरा नहीं उतरन है और तेरा अभिमन्यु···शिवराज। उस चक्रव्यूह में मारा जायगा···यह क्षणिक वरण। यह भावावेश··· अभिमन्यु का यह नाटक मैं नहीं होने दूंगा। लीला मुझे क्षमा करना यह नाटक होते हुए भी नहीं देख पातीं, यह ज्वार न जाने कब उतर आये, इस ज्वार के बाद कमला के पैर कितने कमज़ोर हो जायेंगे। तार पर चल सकने की शक्ति भी छिन जायेगी उससे, तुम तो गवाह हो लीला···कितनी बार तुमने ऐसे सपने देखे थे। तुम्हारी आँखों की चमक और इस कमला की दृष्टि ज्योति।

और शिवराज ने कैसा भयानक सपना देखा था—'मास्टर! ऐसा देखा कि क्या बताऊँ। स्टेज सजा है, भीड़ खचाखच भरी है। वही सीन चल रहा है—अभिमन्यु उत्तरा को वक्ष से चिपकाये समझा रहा है इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में प्रिये! यह जन्म-जन्मान्तर का साथ···तभी बिजली चटकती है, घड़घड़ाती हैं, बादल उमड़ते हैं और देखते-देखते तूफान आता है। भयानक तूफान धरती का कलेजा कंपाता है और आसमान फट पड़ता है···खींच-पुकार···तूफान और पानी, बादल का समुद्र फट पड़ा हो···सब तहस-नहस हो गया···पर्दे चिथड़े हो गये, बल्लियाँ चरचराकर टूट गयीं और स्टेज के तख्त उस सैलाब में बह गये।—वहाँ कोई नहीं था। पानी का सैलाब और डूबे हुए जहाज की तरह चमकते हुए स्टेज की बल्लियों के मस्तूल। न तुम न कमला।—कण-कण बिखरा हुआ। नष्ट-भ्रष्ट। और मैं बुरी तरह चीख पड़ता हूँ मास्टर। आँख खुलती है, मेरे रोंगटे इस वक्त भी उभर आये हैं उसे याद करके।'

बाजामास्टर माथा पकड़ कर बैठ गये, 'हम इस ड्रामे को न ही स्टेज करें तो अच्छा है।'

'नाटक कम्पनी नहीं बनाओगे? और लिखना छोड़ दूं? कमला क्या कहेगी, मजाक करते थे।'

'मजाक समझ लेगी तो बुरा नहीं होगा। तुम पर नशा सवार

है शिवराज ! इस नाटक के बाद फिर क्या होगा ?

'दूसरा खेलेंगे ।'

बाजामास्टर के होंठों पर अनुभव की हँसी फैल गयी, हम तो कहीं-न-कहीं से मार-तोड़ कर खाते-पीते रहेंगे पर कमला क्या करेगी ? कौन-सा आसरा है जो उसका सहारा बनेगा ।'

'सहारा !' शिवराज की आँखों में कमला का चेहरा घूम जाता है यही तो उसने पूछा था उस दिन कमला से । बोली थी, 'बे-सहारा को इतना ही सहारा काफी है कि कोई सहारे की बात करे और धोखा दे जाय । हर तिनके से पतवार की उम्मीद होती है शिवराज । इतना काफी नहीं है कि नाटक कम्पनी का बहाना मिल जाय और तुम छूट जाने वाले तिनके की तरह उम्मीद का झूठा आसरा बन जाओ···' और उसकी आँखों के समुद्र में भटकती हुई अनगिनत कश्तियाँ, उसने देखी थीं । अपने रूमाल से उसकी आँखें पोंछ कर वह खुद रो पड़ा था और कमला अपनी छाती में उसका मुँह दबाकर बालों को चूमती रही थी—'मैं कहीं नहीं जाऊँगा कमला । जहाँ तुम रहोगी वहीं साथ रहूँगा, ऐसे ही जीवन-भर···'

'मैं उससे शादी कर लूंगा ।' शिवराज ने कहा, 'भूखा मरूँगा तो वह भी मरेगी, मैं जिऊँगा तो उसे भी जिलाऊँगा । यह मैंने सोच लिया है मास्टर ।'

'सच !' बाजामास्टर ने पूरी आँखें खोलकर कहा । शिवराज की नजरों में निश्चय था और बाजामास्टर क्षण-भर के लिए चुप रह गया था, फिर बोला था, 'अब लीला सुख से मर पायेगी शिवराज ! आज उसकी आत्मा मुक्त हो गई । अब तूफान नहीं आयेगा शिवराज···'

पर तूफान आया···

शिवराज बड़ी लगन से काम में जुट गया था । बाजामास्टर स्टेज की सजावट का सामान इकट्ठा कर रहे थे—बाँस-बल्लियाँ, रोगन, धनुष, तूणीर, कवच । इसी बीच वे पर्दों और पोशाकों के लिए इटावा

की एक कम्पनी के पास भी हो आये, जो धार्मिक नाटक खेलने में मशहूर थी। पहली बार माँग-जाँच से काम चला लिया जाय, फिर आमदनी से अपनी कम्पनी के पर्दे-पोशाकें बनवा ली जायेंगी। नाम रखा गया 'लीला नाटक कम्पनी' जिसका कपड़े वाला साइनबोर्ड बनाने के लिए मास्टर आगरा गए थे। नीले रंग का साइनबोर्ड—लीला को पसन्द था नीला रंग, नील समुद्र, नीला आकाश, नीलपंखी मयूर··· जैसे वह कोई मन्दिर बनवा रहा हो—ऐसी अगाध श्रद्धा। पर कमला कैसे आयेगी रिहर्सल में? रात-भर कार्नीवल में, दिन-भर निकलने की, पब्लिक से मिलने की छुट्टी भी नहीं। बड़ा खंखार आदमी था मैनेजर, मेढ़क की तरह निकली-निकली आँखें और छिली हुई खुबानी की तरह डोरेदार पीत-लालिमा लिए नशे में डूबी पुतलियाँ। कमला तो सहम जाती है, उन्हें देखकर।

पर शिवराज जैसे तूफान में बहा जा रहा हो। दिन-रात उसी के तम्बू में पड़ा रहता। अभी तक उसे किसी ने टोका नहीं था। वहीं बैठकर नाटक का मसौदा देखने में मन लगता, जैसे कमला के होने का आभास भर सारी बातों को निश्चयात्मक रूप देने में सहायक होता हो। खर्चा जोड़ता, हिसाब लगाता और जब कमला रात स्टेज पर मिले इनाम के रुपए उसके सामने रख देती तो उसका हृदय भर-भर आता—'तन-मन-धन सब दे डालेगी कमला इसके लिए, इन्हें अपने पास रखा कर।' प्यार से वह कहता और कमला सोचती—कल और ज्यादा कमायेगी। शिवराज चाहता मना कर दे। ये ले लेगा तो वह और इनाम पाने के लिए उन मधुर चितवनों को बाँट देगी जो वह अपने लिए संजोना चाहता है। घूंसा-सा लगता है छाती पर, परन्तु कितनी जल्दी वह इस घेरे से निकाल ले जाय इसे। पर वह कुछ भी नहीं कर पाता, वह किसलिए कह रही है? मलिनता तो मन में नहीं, चाहती है वह भी कुछ कर सके। बाजामास्टर को दौड़ते-धूपते देखती है तो सहा अहीं जाता उससे—एक वक्त का खाना छोड़कर कितने पैसे बचा

पाओगे मास्टरजी ।' वह उन्हें मास्टरजी ही तो कहती । 'उनसे कहो तन का खयाल रखें, स्टेज पर हँसी करवानी है क्या ? छाती दरक जाती है जब पब्लिक तक आवाज पहुँचानी पड़ती है । ऐसे कमजोर हो जायेंगे । मैंने उन्हें रोते देखा उस दिन, क्या बात है ?'

शिवराज बात टाल जाता । उसे एक ही बात सालती है—कमला कैसे बाहर आयेगी इस कार्नीवल से । कमला को भी दिन में मैनेजर कई बार बुलाता है । कुछ···कुछ कहता-सुनता तो नहीं । पर वह हमेशा कोई छोटी सी बात बताकर उसे शान्त कर देती है । अपनी मजबूरी छिपाती तो नहीं । उसका मन कड़वा हो जाता है । यह कार्नीवल··· जुए का अड्डा । जब भी मौका मिलता, लोगों को भड़काता—'शहर के लोगों को जुआरी बनाने का तरीका है । वैसे भी जिले में जरायम-पेशा लोगों की कमी नहीं है, इससे और क्या होगा । लोग आयेंगे, हारेंगे चोरियाँ, करेंगे···। मार-पीट दंगा मचायेंगे···'

रंगीले ने आकर बंसिरी को बताया, मैं तो समझता था शिवराज कार्नीवल वाले जुआरिओं के फेर में पड़ गया, वह तो कार्नीवल उखड़-वाने के लिए इधर-उधर दौड़ रहा है । तुम कहती थीं सरनाम उसे बिगाड़ रहा है···

'उसका नाम मत लिया करो मेरे सामने ।' बंसिरी बोली तो रंगीले चुप हो गया । पिछले कुछ दिनों से जादू कर लिया है उस पर । जब से उसे पता चला है कि खुशी होने वाली है···काश ! आज अम्मा होतीं, वह सुनतीं तो न जाने कितने काम-धाम अभी तक शुरू हो जाते ।

'क्या सोच रहे हो, नाराज हो गए मेरी बात से ।' बंसिरी ने उसे टोका । रंगीले ने मुस्करा दिया, एक और सुनी हुई खबर उसने बंसिरी को दी—'सुना है सरकार सब मोटर-बसों को अपने कब्जे में ले रही है । सरकारी देख-रेख में इन अड्डों से बसें चलेंगी । डिराईवर-क्लीनर सब सरकारी आयेंगे, पता नहीं इन डिराइवरों का क्या होगा ?'

'मैं तो कहती हूँ हो जाय, कल होता आज हो जाय । कम-से-कम

सिंह जी से तो तुम्हारा पिंड छूटे। नौकरी नहीं रहेगी तो झक मार के जायेंगे नहीं···ये गुल-गपाड़ा तो बन्द होगा, यहाँ अड्डे का···और उसकी आँखों के सामने एक चित्र उभर आता है—

अड्डा वीरान पड़ा है···दूर तक जाती निर्जन सड़क, जिसे पेड़ों की परछाइयों ने काला रंग रखा है। शाम का धुंधलका छा गया है, ऐसे में यह दूर अन्तरिक्ष तक जाती हुई धुएँ की लकीर-सी सड़क कितनी उदास लगती है। 'एक छाया उस अनन्त सड़क पर अकेली चली जा रही है। पेड़ों की काली परछाइयाँ उसे देर-देर तक अपने में छुपाए रहती हैं। फिर कहीं खुले में वह छाया दीख जाती है—जैसे अथाह जल में डूबता-उतरता कोई लकड़ी का टुकड़ा। आसमान चुप है, उसके जाते पैरों की आहट तक नहीं आती, जैसे निस्तब्ध गगन में उड़ता कोई अकेला पंछी···निःस्वन निरपेक्ष। सहसा छाया ठिठकती है और जैसे हारकर कोई वस्तु बड़ी पीड़ा से फेंककर आगे बढ़ जाती है। एक स्वर उभरता है। शायद गगन के पंछी का स्वर फूट पड़ा था, संगीतमय स्वर···पर यह क्या? यह तो बैंजो पड़ा है, जिसके तार टूटने के बाद भी थरथरा रहे हैं···यह स्वर किसका था? टूटे तारों का? संगीत की यह अन्तिम चीत्कारें बोझिल, उदास और···अवसाद-भरी···क्या वह सचमुच चला जायेगा? वह छाया चली गयी? अब कभी नहीं आयेगी। और ये घुंघराले बालों की तरह लिपटे हुए टूटे तार···

रंगीले तीसरी खबर देता है—'सरनामसिंह वाली डकैती के चार लोग गिरफ्तार हो गए है, बड़ी मार पड़ रही है, कबूलवाने के लिए सुना है, जोड़-जोड़ तोड़ दिया है पर सुराग नहीं देते। बज्जर हैं ससुरे। यह डकैती चलेगी ज़रूर। बर्र के छत्ते में हाथ डाल दिया। बड़ा मुक़द्दमेबाज आदमी है जिसके यहाँ मोर्चा लिया था इन लोगों ने।' फिर कुछ डरते हुए कि कहीं बंसिरी भभक न पड़े, उसने बताया था—'सरनामसिंह की पूछ-ताछ के लिए दीवानजी आये थे हमारे पास। शिवराज को भी कोतवाली जाना पड़ा। अब हम क्या बतायें सरनाम

कहाँ हैं ?' कहकर उसने बंसिरी का मुंह देखा।

बंसिरी चुप थी, एकदम चुप। न जाने उसकी आँखों में कैसी व्यथा बादलों की तरह घुमड़ रही थी। रंगीले ने बात बदली, चौथी खबर सुनायी—'परसों, एक रोज के लिए बाहर जाना है, फर्रुखाबाद जजी में पेशी है। दोनों तरफ का किराया और पचास रुपया नजराना।' रंगीले गवाही देने के लिए तय की गयी रकम को नजराना ही कहता था।

'जाना जरूरी है ?' बंसिरी ने पूछा, 'काहे का मुकद्दमा है।'

'अब यह पता नहीं, ये तो वकील साहब बतायेंगे और गवाही रटायेंगे। वैसे शायद मिल्कियत का कोई झगड़ा है।'

'लेकिन तुम्हारी गवाही का क्या असर पड़ेगा, तुम्हारा जिला दूसरा है और फिर यहाँ की बात भी नहीं।' उसने यों ही पूछ लिया।

'जिस गाँव का झगड़ा है, उसमें चौदह-पन्द्रह बरस पहले मैं रहता था, वहीं के एक खानदान का घरेलू झगड़ा वगैरह हुआ होगा। अब तुम नहीं समझोगी यह सब।'

बंसिरी ने हुंकारी भरी। रंगीले ने आगे सुनाया—'आज और लोग भी पकड़ के आ गये होंगे, मुकदमा चालू होते ही वह भी खुद इजलास में पेश हो जाये।'

'कौन।' बंसिरी ने पूछा, रंगीले ने बताया—'सरनाम शायद कल-परसों तक वापस आ जाय। एकाध दिन छुपा-छुपाया रहेगा, फिर पेश हो जायेगा।' बंसिरी का दिल अनदेखी आशंका से धड़क उठा···

तीसरे दिन वह अकेली रह गयी। रंगीले गवाही देने के लिए चला गया। रोज ऐसी ही शाम उतरती थी, ऊँची-ऊँची इमलियाँ आसमानी साड़ी में सुरमई किनारी की तरह टक जाती थीं, पर आज शिवराज आया था—सरनाम ने भेजा था उसे, रंगीले को बुला लाये, जरूरी काम है। बड़ी देर बैठा रहा, वह तो चौंक गई थी शिवराज को देखकर। महीने-भर पहले देखा हुआ उसका मुख···और आज का

मुख। जैसे किसी प्रगाढ़ विश्वासमय प्रेम की उद्दीप्त छाया पड़ गयी हो उस पर, पीलाई अनोखे सांवलेपन में बदल गई थी। भवें घनी हो गयी थीं और आँखों में निश्छल मंथरता समा गयी थी। बहुत बातें करता रहा—कार्नीवल को महीने भर का नोटिस मिल गया है···डेरा-डम्बर उखड़ जायेगा। गरीब लोगों को चूस डाला कम्बख्त ने।'

'सुना, बड़ी दौड़-धूप की थी तुमने भी···'

'करनी पड़ती है, मुहल्ले वालों का साथ देना जरूरी होता है, सरकस और नाच-गाना तो नाम के लिए हैं। जुए का अड्डा है यह। वैसे कोई खेले तो पकड़ लिया जाय, पर यहाँ खुले आम खेलने की इजाज़त है, बेरोक-टोक। यह भी कोई बात हुई भला ? और ये जनता की सेवा का ढोंग करने वाले सब पूंछ दबाये बैठे रहे, बल्कि काँग्रेस के नेता मुसद्दीलाल सिफारिश करने पहुंचे थे कि नोटिस रद्द कर दिया जाय। पर वह हुआ नहीं।' शिवराज की आँखों में लोनी चमक आ गयी, बोलता गया—'हम एक ड्रामा खेल रहे हैं···'

'फिर वही नचकइयों-गवइयों की सोहबत में पड़ गये ? मैं पड़ी थी, उसे अभी तक भुगत रही हूँ ··' बसिरी बोली, पर सचमुच मन के भीतर कहीं बड़ा गहरा लगाव था। गहरा लगाव था। सोचते हुए बोली—'इस पेशे का आदमी न जाने कैसा हो जाता है, हम जिनका पार्ट खेलते हैं उनका दर्द, उनकी खुशी से हम में कोई अच्छी बात पैदा होने के बजाय बुरी आदतें घर कर जाती हैं। इसीलिए लोगों की नजरों में गिर जाते हैं। लेकिन एक बात है शिवराज—जब तक स्टेज पर आदमी रहता है, बहुत ऊँचा उठ जाता है, जो लैला का पार्ट करती थी···मन करता था, उसके हाथों को चूम लूं। पैरों को माथे से लगा लूं, पर उसके बाद जब वह बाहर आती और जिस तरह उठती-बैठती, जिन फ़ेलों में पड़ती, उन्हें देखकर मन होता—इस पर थूक दूं···'

'यही तो अपने आप को सुधारने की बात है, इसके लिए जिम्मेदारी नाटक कम्पनियों पर नहीं है।'

'हाँ, यह ठीक है···' बंसिरी ने जैसे भूले-भूले कह दिया—'दुनिया के भीतर एक छोटी-सी दुनिया बनाने की चाह हरेक में होती है··· और नाटक सचमुच ऐसी ही एक न्यारी दुनिया है। पर्दों, लट्ठों, तख्तों की दुनिया—लाली, सफेद और रंग-बिरंगी पोशाकों की दुनिया। मन को बड़ी शान्ति मिलती है उसमें, सब भूल-बिसर जाता है, बाजों की आवाज में···ढोलक, हारमोनियम, नगाड़ा, तबला, सारंगी, मजीरा, घुंघरू। अनोखी आवाजें ही सबकी···मन मचलने लगता। हम स्टेज के पीछे मुंह पर लाली-सफेदी लगाती ही होतीं कि स्टेज पर तबले की थाप सुनायी पड़ती···सारंगी की दर्द-भरी सदा और झूमते हुए मर-सूनिया की आवाज़ और टीस की तरह तपकता हुआ मंजीरा···कौन लड़की लैला न हो जाती शिवराज ! अपना वश चलता है ऐसे में कहीं···'

सचमुच वश नहीं चलता···जब से शिवराज गया है, वह पचासों बार पर्दा हटाकर अड्डे की तरफ झाँक आयी है ··पर वह नहीं दिखाई दिया। उस दिन की लड़ाई के बाद वह वीरान हो गया···शायद छुपा बैठा हो···पर अपने कल-पुर्जे, अगड़-खगड़ देखने जरूर आयेगा उस पास वाली कोठरी में। उन्हें जोड़-तोड़ बगैर उसे चैन कहाँ। खाली कहाँ बैठता है, कुछ नहीं तो लोहे के भारी-भारी पुर्जों को कूटेगा ···रेतेगा और उन्हें इधर-उधर फिट करेगा···मोटर स्टार्ट करके सर के बल इंजन में डूब जायेगा—तब यहाँ से सिर्फ उसकी पीठ दिखती है—चट्टान-सी पीठ। टंकी पर मोमबत्ती चिपकाकर मशीन से सर मारता है, भूख-प्यास सब बिसर जाती है। बाँहों तक कमीज सरकाये मोबीआयल में बाँहें रंगे, काली चीकट अंगुलियों से माथे के मोती जमीन पर टपका देता है···उन मोतियों को पी लेती, मछली की भाँति ···पवनपुत्र के स्वेद-बिन्दु।

पर सरनाम अपनी उन टूटी-फूटी मशीनों के पास भी अभी तक नहीं आया। इमली की जड़ों से अंधेरा फूट-फूटकर ऊपर आसमान की तरफ बढ़ता जा रहा है। देखते-देखते ये छतनार पेड़ काली पहाड़ियों

में बदल जायेंगे और आसमान पर कालिख पुत जायेगी, पर वह इधर नहीं आयेगा ? अड्डा सुनसान पड़ा है, दिन-भर दौड़ने वाली लारियाँ थकी हुई खड़ी हैं, भभूत रमाए। कच्ची पटरी में पहियों की गहरी-गहरी नालियाँ बन गई हैं। एजेण्टों वाला तख्त खाली पड़ा है। छप्पर की निकली हुई बल्ली में एक फटा टायर लटक रहा है, जैसे अजगर गोल-मटोल हो गया हो—ऊपर चढ़ पाने के लिए। सरेशाम अड्डा वीरान हो जाता है इन दिनों··· कैसा अकेलापन छा जाता है इस कार्नी-वल के मारे···आजकल वहीं जमाव लगता है।

बंसिरी भीतर चली जाती है, पर यह आवाज कैसी ? अड्डे की बन्द कोठरी में से स्वर-सा फूटता है—घुटा-घुटा, फिर रुक जाता है। क्षण-दो क्षण बाद फिर तिन्···तिनन्···तिनन्···जैसे पथरीली जमीन पर हौले-हौले पानी बह रहा हो···कि एक धुन फूटती है—सरनाम का बैंजो···गायेगा नहीं ? मन खिंचता है···कैसा अटकाव है इसमें। मंत्रशक्ति···। आजा तुझसे माफी माँग लूं। तुझे क्या पता था कि बारूद का खेल खेलने वाली तेरी अंगुलियों में इतना रस भरा है···अभी तो सजी-संवरी भी नहीं, कैसे आऊँ स्टेज पर···

तभी कोठरी के किवाड़ खुले, सरनाम बाहर निकला और ताला बन्द करके अपने घर की ओर चला गया। जाते हुए उसने देखा, ठीक वैसे ही चला रहा था जैसे तीन-चार दिन पहले एक एकाकी छाया उस अनन्त सड़क पर अपना संगीत-साथी फेंककर चली गयी थी··· वैसी ही अनुभूति, कोई रोककर पूछे—कहाँ ? क्यों ? अभी निकट है वह छाया, क्या हुआ है उसे ? नहीं बतायेगा किसी को। किसी को भी नहीं ? अपनी आँखों को आँचल से सुखा लेती है वह। अब कोई भी नहीं, अड्डा एकदम निर्जन है, सभी स्वर डूब चुके हैं।

पर आजकल बाजामास्टर घंटों बैठकर रियाज़ करते हैं। हाथ उतर गया है, न जाने अंगुलियों की चपलता कहाँ खो गयी, स्वर उभरते हैं पर हाथ शिथिल हो जाते हैं···

कमला से नहीं देखा जाता। शिवराज से कहती है बार-बार—'मास्टरजी को समझाओ।' पर मास्टर पर पागलपन सवार है—लीला नाटक कम्पनी का नाटक ऐसा हो कि पहली बार में पैर जम जायें। हारमोनियम ऐसा बजे कि लोगों के दिल में और सुनने का मलाल रह जाय। बाजामास्टर जिस महल्ले में रहते हैं, उसमें बात सुनसुना रही थी। मिलने-जुलने वाले आते रहते हैं, पर हबीब साहब का आना कुछ माने रखता है।

सफेद रेशमी-सी दाढ़ी, अधपकी मूँछें और भवें, छोटे-छोटे कटे हुए दूध से सफेद बाल—पतले होंठों में पान की लकीर और शरीफे के गुद्दे में चमकते बीज की तरह गंदली आँखें। लम्बा इकहरा शरीर, जो बाँस की तरह ऊपर से कुछ झुक आया है। अलीगढ़ी पैंजामा और लम्बा कुरता—बुर्राक पर शुद्ध खद्दर का। चाँदी की चेन में बंधी पुरानी गोल घड़ी और एक मोटा बेंत। यह हैं हबीब साहब—शहर के बुजुर्ग प्रगतिवादी। पर यहाँ भला क्या चलना—प्रगतिवादी और वह भी मुसलमान। करेला और नीम चढ़ा। अछूत से भी बदतर हालत कर दी फिरकापरस्त और मजहबपरस्तों ने। पर जैसे बांस टूटता नहीं, हबीब साहब का रेशा-रेशा अभी तक लड़ रहा है, पर डटा नहीं। गवर्नमेंट स्कूल में इतिहास के मास्टर होकर आये थे, विनाले गये तब से यहीं रहने लगे हैं। बस, उमर ने मरोड़ दिया है—खपांचे-खपांचे चटक कर अलग हो गई हैं। 'इप्टा' का बड़ा काम किया था हबीब साहब ने जिले में, और उनकी मर्दानगी दंगों में सामने आई थी। हबीब साहब को हिन्दू-मुसलमान कंधों पर उठाये घूमते थे, और 'इप्टा' के सिलसिले में बाजामास्टर उनके नजदीक आये थे, पर उस वक्त हिन्दुत्व का जोर उन्हें अलग कर ले गया। अब हबीब साहब

उनसे मिलते हैं तो उन्हें अपनी गलती का अहसास होता है—क्योंकि वह ऐसी जगहों में रह आया है जहाँ मजहब का फ़र्क ज़िन्दगी की कशमकश में सिर नहीं उठा पाता, उसकी अहमियत ही नहीं रह जाती, और जहर का वह दाँत अपने-आप टूट जाता है। उन सस्ती वेश्याओं के चौबारों पर हर मजहब-परस्त तन को एक ही नज़रिए से देखता आता है···

हबीब साहब अपनी फटी हुई आवाज में उससे बातें कर रहे थे—'मास्टर साहब ! जरूर खेलिए नाटक। ऐक्टरों की कमी पड़ेगी, मैं इन्तजाम कर दूँगा। दो गैसें अपने यहाँ हैं, मंगवा लीजियेगा। एक पुराना सेट पड़ा है जंगल के सीन का, उसे बाग में भी तबदील किया जा सकता है। बल्लियाँ वगैरह इमारती काम के लिए आई थीं, उन्हें इस्तेमाल में ले आइए।'

फिर हबीब साहब आगे कहते, और क्यों न हम लोग मिल-जुल-कर एक मजबूत कदम उठावें। अब मजहब-परस्ती के छिलके उतर चुके हैं और इन्सान अपनी असली लड़ाई पहचान चुका है। हम उसे ताकत दें, दिमागी तन्दुरुस्ती दें। एक हिन्दी स्टेज कायम करें, जिस पर अवाम की रोजमर्रा की जिन्दगी की जीती-जागती तस्वीर पेश करें···हम आदमी में जजबात पैदा करें। उसे दर्द से पसीजना सिखायें मैं कहता हूँ रोना सिखायें···ताकि वह कल हँस सके, ताजे फूल की तरह नयी पौध मुस्करा सके।' लम्बे बांस की तरह हबीब साहब का बदन काँपता है और उनकी ऊँचाई के सामने मास्टर और शिवराज बरसाती घास की तरह लगते हैं···

शिवराज के दिल पर असर हुआ था, मास्टर से बोला था—'सचमुच किसी ऊँचे आदर्श से अपने को जोड़े बिना हम सूख जायेंगे, घास की तरह, या ये जानवर हमें रौंद कर खा जायेंगे। हम यह भी सोचें कि हम यह सब क्यों कर रहे हैं ? किसी लक्ष्य के लिए जियें-मरें।'

'जो चाहे करो भइया।' बाजामास्टर बोले, 'हमारा लक्ष्य लीला है, लीला। उसकी बात पूरी कर सकूँ···मेरे लिए वही अन्त है। मेरी समाप्ति। हर आदमी हर मंजिल तक नहीं पहुँचता। मेरी मंजिल यही है, आगे का रास्ता तुम्हारा है शिवराज। मुझे यहीं छोड़ देना पर तुम आगे जाना। मेरा मन इससे आगे जाने को नहीं होगा, मैं जानता हूँ। तुम लिखो और इन बुराइयों से लड़ो। मैं पैर तले से ज़मीन नहीं ख़िसकने दूँगा—स्टेज की ज़मीन।'

पर बवंडरों को किसने देखा था···

सरनाम इधर-उधर से पुलिस की कार्रवाई की सुनगुन लेता रहता। उसे अपनी चिन्ता अधिक नहीं थी, जितनी कि मंगल की। मंगल भी अपनी गिरफ्तारी बचाता हुआ घूम रहा था, आखिर वह भी सरनाम के पास आ लगा। पुलिस सरनाम के घर के चक्कर लगा रही थी। रंगीले से अधिक मातबर आदमी भी कौन था? पर वह बंसिरी। ऐसा वैर मान गयी कि हाथ नहीं रखने देती। मंगल को कहाँ ठहराये? सबसे सुरक्षित उसी का घर है, पुलिस वालों से रंगीले का राह-रसूख भी है, कोई बात भी नहीं उठेगी। शिवराज से उसने रंगीले को बुलवाया और सारी स्थिति समझा दी। बंसिरी इधर शान्त थी, और फिर सरनाम के अहसान···मंगल ऐसे खुराफाती से दुश्मन हो जाने का डर भी···यह तो करना ही पड़ेगा उसे, सरनाम के आड़े वक्त काम न आया तो क्या सोचेगा? जन्म-भर के लिए दुश्मनी हो जायगी।

बाहर बैठक के दरवाज़ बन्द करके तीनों बैठे थे, रंगीले हर क्षण सतर्क था, कहीं कुछ हो न जाय। बंसिरी पगला न जाय, उसने पूछा तो रंगीले ने बड़ी आसानी से समझा दिया। 'मेरा एक दोस्त है। आज रात यहीं रुक के सुबह गाँव चला जायगा।'

'और दूसरा कौन है?' बंसिरी के प्रश्न को सुनकर किसी भावी आशंका से वह सिहर उठा। आज अगर इसने सर की टोपी उतारने

की कोशिश की तो निबट लेगा। साफ-साफ कह दिया, 'सरनाम है।' पर बंसिरी चुप रही, रंगीले ने राहत की सांस ली।

मंगल भला कब मानता। बोतल सामने रख ली, 'पी लो सिंह जी, कहीं ज़मानत न हुई तो बूंद-बूंद के लिए तरस जायेंगे।' यह धीरे बात क्यों नहीं करता, बंसिरी ने जान-भर पाया कि आसमान फटा। सरनाम ने कहा—'एक कांस्टेबल घर के लगातार चक्कर काट रहा है। मन मैं आता है टंटा अलग करूँ···।'

सुबह दीवानजी डकैती वाली तहसील के सर्किल इंस्पेक्टर के साथ आये थे। केस बनाना था। डकैतों के नाम रख दिये गए थे, पर गवाही? गवाही अजड़ चाहिए भाई। उसी पर सारा दारोमदार है। दीवानजी ने कहा था, 'रंगीलाल जी मदद करेंगे दरोगाजी आपकी, ये चाहें तो सब हो सकता है। और इनकी गवाही। अकाट होगी। मैंने कहा था कि ऐसा गवाह दिलवाऊँगा कि बिगड़ता केस बन जाय···' और सर्किल इन्सपेक्टर ने घाघ की तरह रंगीले को निहारा था। पीते-पीते रंगीले ने कह ही दिया, 'दीवानजी वारदात वाली तहसील के दारोगाजी के साथ आये थे, चाहते थे मैं गवाह बन जाऊँ।'

'किस में, हमारे मुकदमे में' सरनाम ने पूछा।

'हाँ।' रंगीले ने कहा तो सुनकर सरनाम ने एक ठहाका लगाया, 'खूब रही भाई। मेरा जूता मेरे ही सर···।' और गिलास चढ़ाता हुआ वह उन्मादी की तरह देर तक हँसता रहा।

रात गये सरनाम चला गया, पर मंगल लगातार पीता रहा और अनाप-शनाप बकता रहा। बंसिरी ने सब भाँप लिया था, भीतर ही भीतर वह क्रोध से भुनी जा रही थी। यह दगाबाज़ी और मुझसे···। सरनाम की खातिर इतना बड़ा झूठ। मंगल ने बैठक में कै कर दी, कच्ची शराब की बदबू सारे घर में व्याप्त हो गयी। रंगीले ने नींद में हुक्म चला दिया, 'जरा इसे साफ कर जाना।' जल ही तो गयी। पानी की बाल्टी और झाड़ू लिये जब वह पहुंची तो पहली बात

बोली, 'इसे निकालो घर से, अभी···इसी वक्त ।'

'ऐसी हालत में । तुम···' रंगीले कुछ कहना चाहता था ।

'मैं कहती हूँ वह करते हो या नहीं···या मैं खुद करूँ ? निकालो इस शोहदे-बदमाश को घर से ।'

'आधी रात को भला···'

बंसिरी चीख पड़ी, 'कहीं जाये, नाली में पड़ा रहे, पर यहाँ नहीं रुक सकता । एक मिनट भी नहीं···

मंगल ने आँखें तरेर कर देखा और खुद चुपचाप बैठक के बाहर लड़खड़ाता हुआ निकल गया । पर हालत उसकी ठीक नहीं थी । रात गश्त वालों ने उसे बेहोशी की हालत में थाने पहुँचा दिया और सुबह होते-होते खबर फैल गयी कि एक डकैत और पकड़ा गया ।

सरनाम का खून खौल उठा । दो कौड़ी की औरत की यह मजाल ? मुझसे लड़ेगी । और इस तरह ? रंगीले ने सब सुना, सफाई दी, पर सरनाम के सर पर खून सवार था—'वह औरत मुझसे दुश्मनी निभा रही है । उसे सबक सिखाने के लिए निशाना तुम बन जाओगे··· मेरी भलाइयों का यह नतीजा मिलेगा मुझे ? तुम इतने दब्बू और बेकार साबित होगे, यह मैं नहीं जानता था । मेरी औरत होती तो देख लेता···उसकी यह हस्ती···'

सब सुनकर भी बंसिरी नीतिज्ञ की तरह चुप रही, पर यह उसने जान लिया था कि सब इस तरह चल नहीं पायेगा—जानवर हो गया है वह । उसके साथ आदमियत का बर्ताव । अब नहीं सहेगी, बहुत हो लिया । साँप का ज़हर नहीं मरता । इतना विष है उसके काले दिल में···। बेईमान, दगाबाज़, बेवफा । एक बार भी बीते हुए दिन याद नहीं आते ? हर जगह मेरी इज्ज़त इसके लिए खिलौना रही है—औरत ही हूँ मैं । सराय में बिकी हुई औरत—'जब तक पूरे रुपए नहीं चुकाता यह, तब तक तुम रखो इसे ।' क्या समझा था—घास-पात । रहम किया था मेरे ऊपर । तेरे रहम का बदला···सड़-

कर मरेगा···कैसा डरावना हो गया है। शक्ल से मनहूसियत टपकती है।

और शाम जब चरही में पानी भर कर रगीले लौट रहा था तो मंगल के लोगों ने उसे सबक दे दिया—और करेगा दगा। पीठ में छुरी भौंकने का नतीजा है यह। गली से गुज़रते हुए किसी आदमी ने बेहोशी की हालत में उसे घर पहुँचाया था। बंसिरी के तो हाथ-पैर फूल गये। क्या करे—कहाँ ले जाय, हाय राम, मार डाला बदमाशों ने। रंगीले का शरीर जगह-जगह लाठियों की मार से सूज आया था, पूरे शरीर पर नील पड़ गये थे। खून निकल जाता तो इतनी हड़फूटन न होती, वह बेकल पड़ा था। बसिरी रुई के फाये बनाए सेंकती रही, पर कुछ भी असर नहीं हुआ। सर की चोट से नकसीर फूट गयी थी···।

सरनाम ने सुना तो अवाक् रह गया—यह क्या कर दिया। शिवराज से हाल मंगवाता रहा। उसे चैन नहीं था, पर यह सब उसे मालूम भी नहीं था, मंगल के साथियों ने बदला लिया था। एक-एक को देख लेगा पर रंगीले भला क्या सोचेगा ? आखिर किसकी करतूत समझेगा···?

बंसिरी निश्चित मत थी—यह और कौन करेगा उसके सिवा। बड़ा विश्वास करते थे उस पर। अब यह दुश्मनी चलेगी, यह खतरा भी वह उठाएगी। मन में आता है, घायल रंगीले को लेकर शहर छोड़ जाय। पर जाय भी कहाँ···और इस तरह भागना। अब जरूर वह उस मेले वाले किस्से को खोलेगा। मेरी इज्जत पर दाग लगाने की कोशिश करेगा। क्या बिगाड़ा था मैंने इसका ? पर इस तरह जिये ? नामुमकिन था यह। घृणा की लहर उसके भारी-भरकम शरीर में दौड़ रही थी। प्रतिहिंसा की अकुलाहट में जैसे रोम-रोम धधक उठा हो, पर जाती तो बोटी-बोटी काट डालती···कोंच-कोंच कर मारती। वह अच्छी तरह जान गयी थी कि सरनाम का कोप

अब उस पर टूटेगा।

गवाही के लिए रंगीले को पुलिस वाल चाहते थे। एकदम चौकस गवाही पड़ेगी। दुनिया जानती है कि सरनाम और रंगीले का साथ है, एक-दूसरे के काम में हिस्सा बँटाते हैं। दीवानजी ने फिर चक्कर लगाया—उनके मन में कहीं सरनाम के लिए आक्रोश छिपा बैठा था। दड़ा चोरी-छुपे चलता है, इसे पुलिस भी जानती है, पर जब से अफसरों ने कड़ा रुख अपनाया है तब से नीचे वाले दीवान-अमलाओं का कमीशन बंद हो गया है। यह सरनाम की ही करतूत है, लेकिन बच के कहाँ जाएगा? जल में मगर, थल में पुलिस। दीवानजी से बंसिरी ने खुद बात की, रंगीले खाट पर पड़ा कराह रहा था। फौजदारी की रिपोर्ट नहीं करायी गई, साबित तो यही करना था कि डकैतों और रंगीले की मिली भगत है, दीवानजी ने आँचा-पाँचा समझाकर रपट लिखवाने से उसे रोक लिया। बंसिरी बड़ी देर बात करती रही। दीवानजी के चले जाने के बाद रंगीले ने कहा—'यह ठीक नहीं है। सरनाम ने मेरे साथ बहुत बुरा किया है, फिर भी मैं उसके खिलाफ गवाही नहीं दे सकता···गुस्से में आदमी सब कुछ कर सकता है। तुमने भी तो गुस्से में मंगल को आधी रात···?

बंसिरी ने आखिरी अस्त्र फेंका—आँखों में पानी, सिसकियों में होने वाली सन्तान की सूचना—एक क्षण बाद ही उसकी आँखें अजीब घृणा से भर आयीं। किसी अनदेखे अत्याचार की सूचना उसके चेहरे पर मँडराने लगी, उसने धीरे से कहा—'मैं अब तक चुप थी, लेकिन अगर तुम सारी बात जान पाते···' मन में घृणा का तूफान आया हुआ था, उसका बस चल पाता। कैसे भी। उसे अब यह करके रहना है, यह होगा ही, नहीं तो वह चली जायगी कहीं पर भी इस स्थिति को बर्दाश्त नहीं करेगी। रंगीले की आँखों में विस्मय भर आया। वह बोली—'मैं तुम्हारी औरत हूँ न।'

रंगीले ने हुँकारी भरी।

'लेकिन अगर···' जैसे उसकी जबान रुकती हो—'अगर तुम यह सोचते हो कि मुझे छोड़ दोगे···तब ठीक है···' आँखों का बाँध टूट गया, आँसू थमते ही नहीं—'मैं कहीं भी चली जाऊँगी, इस होने वाले बच्चे को लेकर, पर इस तरह रहना नहीं हो पायेगा···।'

'किस तरह ?' रंगीले पहेली में उलझा है ।

'क्या उसने मेरी शादी तुमसे इसीलिए कराई है कि वह···।'

'साफ-साफ कहो···' रंगीले सब कुछ एक साँस में सुन लेना चाहता है ।

'कितनी बार उसकी ऐसी कोशिशें रही हैं कि मैं···इसीलिए वह मुझसे दुश्मनी मानता है ।'

'किसकी, सरनाम की ।' रंगीले की आँखें फटी रह गईं ।

'यह मुझसे नहीं होगा···' आँसुओं और सिसकियों के सैलाब में सब खो गया । रंगीले की आँखों से चिनगारियाँ फूटती हैं—

'देख लूँगा उस हरामज़ादे को । उठाए आँख । एक मिनट में उसकी हस्ती राख कर दूँ···।' आँसू, सिसकियाँ—आग, प्रतिहिंसा । उबाल, घृणा और कुछ कर डालने की बलवती—दुर्दमनीय शक्ति । अपने टूटे शरीर को लिये वह खाट पर बैठा धधक-धधक कर हाँफता रहा और बंसिरी घुटनों में सिर दिये सिसकती रही···।'

३०

बाजामास्टर शिवराज को समझा रहे हैं···'एकदम नयी तरह से ओपिन होगा ड्रामा। नटराज की आरती···दस लड़कियाँ थाल लेंगी, पाँच एक विंग से, पाँच दूसरे विंग से जायेंगी, संगीत रचना में दक्षिणी प्रभाव रहेगा···लीला की तस्वीर पर फूल चढ़ाकर दसों लड़कियाँ इसी तरह श्रद्धा का भाव-प्रदर्शन कर विंग में चली आयेंगी··· कैसा रहेगा।'

लीला की तस्वीर एक फ्रेम में जड़ी अभी से तैयार है, शिवराज ने देखा है, उस पर रोज नयी माला पड़ती है। उसे यह कुछ-कुछ पागलपन लगता है। हबीब साहब रोज आते हैं, बाँस की तरह सर झुकाए और उनकी गंदली आँखों से थोड़ी देर में रोशनी फूटने लगती है। बाजामास्टर की आँखें नशे से झूमती रहती हैं। नाटक में पार्ट करने वाले दिलाराम, बन्शीधर, रामप्रसाद, शौकत, लक्ष्मी, सुशीला की आँखों में उल्लास-भरा अचरज है, और कमला उसकी आँखों में

सन्तोष की परछाईं···स्नेह-डूबी तृप्त आँखें। स्थिर, एक पथ पर टिकी।

पर सरनाम की भवों में तनाव है। किसी आने वाले तूफान की प्रतीक्षा करते आकाश-सा निस्तब्ध सूनापन। कमला पोशाकें सी रही है, ठीक कर रही है—अभिमन्यु की पोशाक। उत्तरा के सुहाग-चिन्ह में मोती टाँग रही है। बाजामास्टर उसे अपने घर ले आये थे, कार्नीवल उखड़ चुका था। कमला ने साफ-साफ कह दिया था, 'मैं अब नौकरी नहीं करूँगी, भूखी मर जाऊँ पर नहीं—'

भीतर-भीतर पकती इस खिचड़ी की महक सरनाम को लग गयी, एक तो अपना चक्कर, दूसरा यह—क्या करे? शिवराज से साफ कह दे—'यही सब करना है तो अपना रास्ता लो।' पर कह भी नहीं पाता। और ऊपर से मोटर-बसों के राष्ट्रीय करता की लटकती हुई तलवार। रोज नयी-नयी खबरें सुनायी पड़ती है। इस लाइन पर भी सरकारी बसें चलेंगी—नहीं-नहीं, यह झूटी खबर है, इस पर नहीं चलेंगी। मोटर मालिकों की यूनियन की बैठक रोज सुबह से शाम तक होती है, कुछ पता नहीं चलता। सुना है दो चार-दिन में मालिकों की ओर से कुछ लोग लखनऊ जाकर परिवहन मन्त्री जी से मुलाकात करने वाले हैं—एक एम० एल० ए० साथ जा रहे हैं। वह कुछ ठीक-ठीक नहीं सोच पाता। कुछ भी साफ नहीं दिखायी पड़ता। शिवराज ही सामने पड़ा तो उबल उठा—'यही सब नंगई करनी है तो मुझे मार के करो। चार दिन और सबर करो, रास्ता छोड़कर खुद चला जाऊँगा। काहे को अती रख ली है, मुकदमे-भर की देर है, तुम सब लोग जो चाहते हो हुआ जा रहा है।'

शिवराज चुप रहा। सरनाम की आँखों में उजाड़ सूनापन व्याप्त है, जैसे इस वक्त कोई सहारा चाहता हो। बोला, 'मैं जानता था, मेरे साथ यही होगा, सब आँखें फेर कर बैठ जायेंगे एक दिन—तो तुमने सब कुछ तै कर लिया है?'

शिवराज चुप है । सरनाम भभक उठा, 'मैं मर गया था क्या ? मैं कोई भी नहीं था ? तुम्हें अपनी जिंदगी बिगाड़नी है तो बिगाड़ लो—एक दिन पछताओगे कि···क्या चाहता था और तुम क्या कर बैठे ।'

'कुछ बुरा तो नहीं इसमें,' शिवराज ने कहा ।

'एक बाज़ारू औरत के पीछे इस तरह बरबादी के रास्ते पर लग जाना जवानी की सनक है । आँखें खोलकर देखो मैं चाहता था तुम कालिज तक जाओ, बी० ए०, एम० ए० करो और इज्जत की जिन्दगी बसर करो । पर तुम्हारे दिमाग पर भूत सवार है, अगर तुम आँखें खोलकर देखने से लाचार हो तो मैं अपनी आँखें बन्द नहीं कर सकता, समझे ।'

'मेरी आँखें बन्द नहीं हैं ।'

'लेकिन यह सब नहीं होगा ।' सरनाम चीखा, 'किसी भी कीमत पर नहीं । मेरा हक है तुम पर, बच्चे की तरह पाला है तुम्हें ।'

'लेकिन मैं तय कर चुका हूँ—'

'उससे कुछ नहीं होता ।' सरनाम चीखता जा रहा है, 'तुम्हारी वजह से आश्रमवालों से वैर मोल लिया, तुम्हारे भाइयों से झगड़ा किया । शहर भर की हिकारत उठाई और अब तुम्हारी आँख देखूँ । वह भी उस बाजारू लड़की के लिए—' कहते-कहते उसकी सूनी आँखों में बादल घुमड़ आए, गला भर आया—'तुम भी यही करोगे शिवराज । मैंने अपने लिए कोई नहीं चुना, कोई मेरे लिए सोचता, मेरे लिए जीता-मरता । कितना प्यासा हूँ मैं । पर तुम्हारे लिए सोचकर मैं अपनी कमी भूल जाता हूँ । मेरा रास्ता गलत ही सही, शिवराज । पर मैं किसी रास्ते पर किसी एक को अपनी तरह चलाना चाहता था, मेरे लिए तुम्हारे मन में भी—' उसकी आँखें डबडबा आयीं ।

३१

शिवराज को उसका प्यार चुम्बक की तरह खींचता है।

बंसिरी ने जब से शिवराज के इस निर्णय को सुना है, खुश है। उस का सरनाम से पिंड छूटेगा। अकेलेपन की मार से वह बेहाल हो जायेगा, घबरायेगा और सोचेगा। तब कभी उसे बंसिरी की याद आएगी। दिलमें हूक उठेगी। तड़पेगा—पछताएगा। और तब वह लस्त पड़े शेर को देखेगी। कितना अनिर्वचनीय आनन्द होगा इस दृश्य में। हारा हुआ आदमी। औरत बेबस हो सकती है तो आदमी हार सकता है। पर वह कैसे देख पायेगी—टूटा हुआ खंडित आदमी। दिल कड़ा करके एक बार देखेगी ज़रूर। अगर आँख भर आयी तो चुरा कर रो लेगी, पर देखेगी ज़रूर। परास्त शक्ति को भी देख सकने की एक अनोखी उत्कंठा होती है। वह उत्कंठा पूर्ति मांगती है। शिवराज को वह समझाती है, उसे ताकत देती है, 'तुम कमला को लेकर यह से चले जाओ, किसी की फिकर मत करो—।'

और शहर में हंगामा मचा है। हबीब साहब का मुर्दा कब्र से उठकर आया है—म्लेच्छ—नास्तिक। और अभिमन्यु नाटक के पीछे राजनीति की चालें खोजी जाने लगीं। गीतानन्द के काँग्रेसी अखबार की तोप पर पलीते चढ़ गये। रोज सुबह एक गोला दगता है।

'कम्यूनिस्टों के जहरीले दाँत अभी टूटे नहीं हैं।'

'शहर को वेश्यालय बना देने की नयी साजिश।'

'सन् बयालीस के गद्दार हबीब की हैरतअंगेज़ हरकतें।'

'पर बाजामास्टर और हबीब साहब निश्चिंत थे।

लेकिन शिवराज के सामने दुर्लंघ्य दीवारें निरन्तर उठती जा रही थीं। सरनाम सिंह अभी भी अपनी गिरफ्तारी बचाता हुआ वकीलों से मिल-जुल रहा था···पर उसके सामने था शिवराज।

'ऐसी लड़की का कोई ठिकाना है जो बाजामास्टर के घर में रहे अकेली। मैं तुम्हारी सारी जरूरतें पूरी कर दूँगा, और क्या चाहिए तुम्हें···?'

और उन गलियों में सरनाम रात झुके खुद शिवराज को ज़बर-दस्ती लेकर गया। शिवराज चलता जाता, पर उसका मन ऊबता जाता। सरनाम बात छेड़े हुए था 'यही सब करना है तो करो, खुल-कर करो मेरी तरह। झूठे दिखावे में मत फंसो, ये गलियाँ बदनाम हैं, पर इनमें निडर आओ—घूमो, देखो, रुको, पर अपने को पहचा-नते रहो। जान-बूझकर धोखे में मत पड़ो···तुम्हें औरत चाहिए। इसके सिवा और कुछ नहीं मैं जानता हूँ। इस गली से नफरत करना सीखो, ऐसी नफरत जो बार-बार तुम्हें खींच लाये। जब तक इन गलियों से नफरत नहीं सीख पाओगे, तब तक इन्हें जानोगे कैसे। आज जिसे तुम प्यार कर रहे हो, वह कल मुलम्मे की तरह उतर जा-यगा, उसके साथ तुम्हारे दिल की चमक खो जायेगी।' सुनकर शिवराज चुप है।

'मुझे देखो शिवराज। उसी चमक के लिए मैं भटकता रहा, लेकिन

फिर वह हाथ नहीं आई…'

गंदी नालियों, बदबूदार दरबों, झनकते घुंघरुओं और बेगाने लोगों से भरी गलियों में वह सरनाम के साथ घूमता रहा…सरनाम की बातों का कोई विशेष असर उस पर नहीं पड़ा, पर वहां के वातावरण ने विरक्ति दे दी। मन उचट गया, अजीब-अजीब-सी बातें उठने लगीं मन में…यह सब क्या देख रहा है? एक बहता हुआ गंदा नाला और उसमें नहाते, गोते खाते सैकड़ों लोग। ध्वस्त मानव खण्डहर और उनमें बसेरा लिए हुए अनगिन पक्षी…विकलाँग, परास्त पराधीन…

और उस रात वापस लौटकर सरनाम ने फिर बोतलें खाली कीं और शिवराज के माथे पर अपना सर टिकाये रोता रहा। उसके रोम-रोम पर अंगुली फेरता रहा। आँखें गड़ाये उसकी कोमल गर्दन को देखता रहा, जिसका त्वचा में निश्चयात्मक मुद्रा की दो धारियां पड़ गई थीं। उसका मन रोता था…अपने निपट अकेलेपन को सोच-सोचकर। ऐसे क्षण में हमेशा शिवराज की ममता, घृणा का पर्त भेद-कर ऊपर आती है। सब कुछ सही, पर आदमी की असंतुष्टि, उसका घबराना वह नहीं देख पाता…

सरनाम ने कहा था…शायद एक-दो महीने में यहाँ सरकारी बसें आ जायेंगी, मेरा भी कोई ठिकाना नहीं, कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? मेरी बातों पर ध्यान मत देना, ठीक समझना सो कर लेना…

शिवराज जैसे परास्त हो गया। रात की उदासी और भी गहरी हो गई थी। तब उसे लगा कि सरनाम जब इतनी झंझटों में से गुजर रहा है, तब कुछ मदद देना जरूरी था, कम-से-कम पूछता ही रहे। डकैती का मुकदमा अदालत में पहुँचा और सरनाम ने अपने को इज-लास के सामने हाजिर कर दिया।

और इकबाली गवाह के रूप में सरनाम के सामने जबरदस्त शह की तरह रंगीले खड़ा था। मोहरा चलाने वाले हाथों को उसने देखा …चुड़ियों से भरे, मेंहदी रंगे हाथ…कैसी भी प्रतिहिंसा नहीं जागती।

मन उचाट है। जो भी होना हो, हो जाये। सात साल की जेल। छुटकारा तो पायेगा इस सब से। और फिर सोरों के मेले में इन्हीं हाथों ने उसके मस्तक के बाल हटाकर कहा था···'कितना चौड़ा माथा है।' और वही हाथ उसके पथरीले शरीर पर पानी की धार से फिसलते रहे थे। इन हाथों का मोह है बंसिरी···याद अभी बाकी है। यही हाथ रक्षा के लिए उठे होते तो हार जाता आज, चुनौती स्वीकार करूँगी पर होगा अनर्थ ही। मेरी जीत सुख नहीं दे पायेगी मुझे···

इजलास में भीड़ जमा रहती। शहर के जाने-पहचाने आदमियों पर डकैती का केस है और सरनाम का लंगोटिया यार खिलाफ शहादत दे रहा है। माजरा कुछ समझ में नहीं आता। बड़ा गहरा केस है, हाकिम बड़ा काबिल है। सेशन कोर्ट में लड़ने की तैयारियाँ अभी से हो रही हैं, जिसके यहाँ डकैती पड़ी, वह भी बड़ा जबर है भाई। इलाहाबाद से बालिस्टर आ रहे हैं, कहता है···'जड़ उखाड़ कर छोड़ूंगा···'

तीन से कम किसी की भी शनाख्तें नहीं। जनानी शनाख्तें, पुख्ता सबूत है। चेहरों पर चिप्पियाँ लगवाकर पहचनवाया गया। एक-एक पहचान में आ गया और भरी इजलास में सरनाम को छः दिखवइयों ने पहचाना। तीन शनाख्त वाले को शर्तिया जेल, तब भला छः वाला क्या बचेगा ? गनीमत यह हुई कि हाकिम ने जमानत मन्जूर कर ली।

रंगीले ने अपनी हिफाजत की अर्जी दी थी, सरकारी गवाह था वह। पुलिस को हुक्म मिला था। एक कांस्टेबिल दिन-रात घर के बाहर तख्त पर बैठा तमाखू पीता रहता।

पहले रोज़ जब वह इजलास से लौटा तो सीधा जनाने अस्पताल पहुँचा, बंसिरी को सब सुनाया। दो दिन पहले वह सरकारी वकील के साथ मौका देखने गया था। सर्किल इन्सपेक्टर भी साथ थे। बड़ी खातिर हुई रंगीले की, और दारोगाजी ने नकद तीन सौ रुपये उसे चौधरी से दिलवाये थे···"तुम्हारी खातिर रंगीलाल ने यह खतरा उठाया है

चौधरी साहब ।"

"लेकिन ये कैसे गवाह बन पायेंगे ?" चौधरी को अपना रुपया डूब जाने की फ़िक्र थी ।

'रंगीलाल का नाम डकैतों में शामिल किया जायेगा, वारंट कटेगा, तब ये पकड़े जाएँगे और कोतवाली में जुर्म का इकबाल करेंगे, बयान देंगे···तब ये इकबाली गवाह बनेंगे···' दारोगाजी ने समझाया ।

रंगीले ने मौका-जगह देख ली, नक्शा अपनी आँखों में उतार लिया, बयान समझ कर बुद्धि में रख लिया और सबसे ऊपर वे तीन सौ रुपये, बाद मुकदमा बाकी तीन सौ···कुल छः सौ का सौदा था ।

इधर नाटक की तैयारियाँ जोर-शोर पर थीं। शहर में विरोध भी बढ़ता जा रहा था । आधी-आधी रात तक रिहर्सल होते, दूसरे दिन ग्राण्ड रिहर्सल की तैयारी थी । युधिष्ठिर का पार्ट करने वाले जगमोहन तिवारी ने ऐन दिन अपनी मुश्किल हबीब साहब के सामने रखी···'आज हमारे हेडमास्टर साहब ने बुलाकर कहा कि अगर आप को नाटक ही खेलना है तो स्कूल से इस्तीफा दे दीजिये···'

'यह सरासर ज्यादती है ।' हबीब साहब ने अपनी छड़ी रखते हुए कहा···'आपने इसका सबब नहीं पूछा ।'

'सबब ? स्कूल कमेटी वाले मौका देख रहे हैं, हम तीन मास्टरों ने पूरी तनख्वाह पाने के लिये बात उठाई है । और फिर मैं लंका में अकेला विभीषण हूँ न ।' जगमोहन तिवारी ने कहा । 'भीतरी बात और है । हर स्कूल में अपना-अपना चल रहा है । असल में सरकारी स्कूलों को छोड़कर कौन-सा स्कूल है जिले में, जो किसी जाति विशेष के आधिपत्य में न हो । ब्राह्मणों के अपने स्कूल हैं, कायस्थों के अपने, अहीरों के अलग, अग्रवालों के अलग, हर जाति का सर्प फन फैलाये बैठा है । इस बार मैं उसका शिकार बन रहा हूँ ।'

'क्यों, पूरी तनख्वाह नहीं मिलती ?" हबीब साहब ने पूछा ।

'यह किससे छुपा है । कौन-सा ऐसा प्राइवेट स्कूल है, जिसमें पूरी

तनख्वाह मिलती है। चाहे वह मेरा स्कूल हो, चाहे अग्रवाल विद्यालय चाहे आर्य समाजी हाई स्कूल। सौ देते हैं, एक सौ पचास की रसीद लेते हैं। जरूरतमन्दों को सब स्वीकार करना पड़ता है। नहीं कर तो बाल-बच्चे कहाँ से पालें ?' जगमोहन ने कहा तो हबीब साहब तलखी से बोले, 'यह बात है। इसीलिये आपको निकालने का मौका···'

हबीब साहब ने कहा, "सोच लो भाई नुकसान न हो आपका।'

पर तिवारी भला कब मानता। कहता है, 'निकाल के देखे। बगैर कम्पलेण्ट निकाले तो भला। मैं देख लूँगा। कहते हैं विद्यार्थियों पर आपके इस आचरण का बुरा असर पड़ेगा, स्कूल की बदनामी होती है इसमें। पचहत्तर रुपये देकर एक सौ बीस की रसीद लेते हैं और आचरण का नुस्खा पिलाते हैं ?'

हबीब साहब और बाजामास्टर एक-एक अभिनेता की देखभाल अंडे की तरह कर रहे हैं। एक भी टूटा तो सब चौपट।

स्टेज बनाने का काम हबीब साहब ने उठा लिया। बाजामास्टर को फुर्सत कहाँ ? लाली, पाउडर, कालिख···दुर्योधन की धोती का इन्तज़ाम और मुकुट। जल्दी मोती टाँककर तैयार करो भाई। अभिमन्यु का तरकस। क्या कहा ? कागज़ नहीं चढ़ा उस पर। फौरन करो, नहीं तो कब सूखेगा और लड्डन तुम्हारे तीर-कमान तैयार हैं ? ऐसे कैसे चलेगा, ऐन वक्त पर क्या होगा ? कर लो मेरे भाई···कृष्ण का पीताम्बर अभी तक नहीं आया ? पैसे कहाँ हैं। कमला की साड़ी फाड़ कर पीली रंग लो···काम चलाओ किसी तरह।

कौंधती बिजली की तरह बाजामास्टर अभी यहाँ दिखाई पड़ते हैं, अभी वहाँ···प्राम्पटर के सहारे रहोगे तो सब चौपट हो जायेगा। रटो, पार्ट रटो···प्राम्पटर भूल सँवारने के लिये रहेगा। गाँग···इलाही बैंडवाले के यहाँ से आना है, अभी लाकर रखो।

हबीब साहब सर पर रूमाल रखे अपनी गंदली आँखों से ऊपर बंधती बल्लियों को ताक रहे हैं···पुतली वहीं रहेगी, गाँठ लगाओ ओ

भाई, खड़े मत रहो, पर्दा चढ़ाओ। एक बार टेस्ट करके देखना है। उधर नहीं···और थोड़ा इधर। नौ फुट, नापकर···हाँ···हाँ···तख्त नीचा पड़ता है तो ईंट लगाओ···

ऐक्टर अपना-अपना पार्ट याद कर रहे हैं···कमरे से अजीब-अजीब आवाजें गली में आती हैं···दुर्योधन रिरिया रहा है···"गुरुदेव।" अभिमन्यु की ओजस्वी आवाज़···मैं चक्रव्यूह भेदूंगा···माता के गर्भ में···बीच-बीच में हँसी, सहयोग भरे वाक्य।

और यह सब अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ। शहर में मुनादी से खबर दी गई। मेले-तमाशों के लिए बड़ा उत्साह होता है, काफी भीड़ जमा हुई थी। टिकट दर थी सात पैसा···सबकी पहुँच के भीतर। तिवारी अपने हेडमास्टर की आज्ञाका उल्लंघन करके युधिष्ठिर बन रहा था। बाजामास्टर ने 'ओपनिग सीन' बड़ी मेहनत से तैयार करवाया था···दस नर्तकियाँ हाथों में आरती के थाल लिए विंग में खड़ी थीं, पर्दा उठने को था। बाजामास्टर बीच स्टेज पर लीला का चित्र लगा रहे थे, आँखों में आह्लाद के आँसू···शिवराज कमला को उत्तरा के वेष में देखता ही रह गया···इतना रूप। प्राम्पटर हाथों में कापियाँ लिए अपनी-अपनी जगह खड़े हो गये थे। दूसरे सीन वाले टाट के पर्दे से घेर कर बनाये हुए मेकअप रूम में तैयार हो रहे थे।

हबीब साहब ने विंग में से पूछा, "रैडी।" बाजामास्टर ने लीला के चित्र पर माला डाली और माथा नवाकर स्टेज से हट आये···

विंग में खड़ी नर्तकियों ने घुंघरुओं की समवेत झनकार की··· वातावरण शान्त हुआ और हबीब साहब ने मुस्कराती हुई आँखों से सबको आशीष देते हुए पर्दा उठाया। दोनों विंगों से आरती के थाल लिये घुंघरुओं की झनक के साथ थिरकते हुए पैर स्टेज पर आये··· श्वेत-वस्त्रा नर्तकियाँ जैसे दो दिशाओं से सारसों की पाँत चम-चम सितारे लिए उतर पड़ी हों···दर्शकों ने तालियों की गड़गड़ाहट से स्वागत किया। आरती के थाल लिये श्रद्धामय भाव से नृत्य चल रहा

था···

कि आग—आग की आवाजें नेपथ्य से आयीं···क्षण दो क्षण का असमंजस···तभी स्टेज के पीछे लपटें उठती दिखाई दीं और घबराये हुए अभिनेता इधर से उधर भागने लगे—पानी लाओ···पानी लाओ···मिट्टी डालो···पर धू-धू करती लपटें पर्दों और लकड़ियों को निगलती आ रही थीं···हँगामा मच गया, दर्शकगण में भगदड़ मच गई और पचास-साठ आदमी स्टेज पर पिल पड़े···

बाजामास्टर बदहवास से इधर-उधर दौड़कर पर्दे गिरा रहे थे···हबीब साहब चीख रहे थे—'उधर के कपड़े खींच लो इधर न बढ़ने पाये आग···'' पर भीड़ ने गैस के हंडे तहस-नहस करके उन्हें अँधेरे की चादर में डुबो दिया।···भाग-दौड़, आग से लड़ाई और कुछ लोगों की मार-पीट···बल्लियाँ उखाड़ ली गयीं। "मारो···मारो सालों को। एक भी भागने न पाये।'' यह अचानक हमला कैसा ? कोई पहचाना भी नहीं जाता—आखिर यह हुआ क्या ? बाजामास्टर लीला की तस्वीर उठाने के लिए स्टेज पर भागे कि सर पर जैसे चट्टान आ गिरी हो, आँखों के नीचे अँधेरा···हबीब साहब के घुटने चलते ही नहीं, यह क्या किया किसी ने ? तिवारी और शिवराज किसी तरह लड़कियों को लेकर टीन में खड़ा कर आये, वे डर से चीख रही थीं···

थोड़ी देर बाद तमाशाइयों की कुछ भीड़ उस बिखरे हुए सामान को देखने के लिए खड़ी रह गयी थी—"यह बदमाशी है किसी की।''

जान-बूझकर आग लगाई है, और हमला किया गया···''

हबीब साहब घुटने पकड़े एक तरफ बैठे हैं। बाजामास्टर बेहोश हैं—सर से थोड़ा-बहुत खून आया है, एक प्राम्पटर का हाथ बुरी तरह जल गया है। लपटों ने बाजामास्टर को झुलसा दिया है। जले हुए पर्दों की राख पड़ी है, बल्लियों के जले हुए टुकड़े इधर-उधर लोट रहे हैं···दो-चार बल्लियाँ ज़मीन में बुझी हुई मशाल की तरह गड़ी हैं। पोशाकों का कहीं पता नहीं, टीन के सन्दूक अधजले लुढ़क रहे हैं—

और लीला की तस्वीर का फ्रेम-भर रह गया है।

बेहोशी से उठकर कराहते हुए बाजामास्टर ने वह फ्रेम देखा—बीच की तस्वीर मुक्त आत्मा की तरह लुप्त है। शरीर पड़ा है। ठीक वैसे ही जैसे उस दिन लीला का पिंजरा निःस्पन्द होकर उसकी गोद में पड़ा था। तब आकृति थी, आज वह भी नहीं, आँखें फाड़े बाजामास्टर देखते हैं—क्षार-क्षार हुई सृष्टि को···ध्वस्त सपने उनकी पुतलियों में फड़फड़ाते हैं पर-कटे पक्षी की तरह···

एक विकराल हँसी···जैसे श्मशान में कोई हँसा हो। भयातुर-से लोग बाजामास्टर को देखते रह जाते हैं। लड़कियाँ टीन से इधर आ गयीं, शिवराज उन्हें संभाल रहा है। हबीब साहब आवाज़ लगाते हैं—'यहाँ से उठाओ मुझे। लोगों को अस्पताल पहुँचाओ···' पर बाजामास्टर में अजीब-सी शक्ति आ गयी है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। आँखें फाड़कर कहते हैं—'युद्ध···कुरुक्षेत्र का युद्ध···चक्रव्यूह···हबीब साहब मारे गये···मारे गये।' उनकी चीख डरावनी लगती है···

और तब से बाजामास्टर की ये चीखें बस्ती की किसी-न-किसी गली में वक्त-बे-वक्त सुनायी पड़ती हैं···कमला उन्हें घर में रोककर रखती है, कोठरी में ताला बन्द करके सताती है। हाँ, सताती है वह। शिवराज से हमेशा कहती है, 'इनके लिए कुछ करो, मुझसे देखा नहीं जाता, कोठरी में बन्द करके सताना पड़ता है···'

'अकेले डर भी लगता होगा ?'

'डर नहीं, दुःख होता है, कभी-कभी वह घबरा कर रोते हैं मास्टरजी···'

और शिवराज देख रहा है···उसके पैरों तले से जमीन खिसक गयी है। लक्ष्य भ्रष्ट तो नहीं हुआ पर अवरोध तो है। कितनी जिम्मेदारियाँ ऊपर आ गयीं। हबीब साहब चलने-फिरने से लाचार हैं। बाजामास्टर नीमपागल हो गये हैं, अर्धविक्षिप्त। तिवारी को स्कूल कमेटी से नोटिस मिल गया, अगली पहली को उसकी नौकरी खत्म

हो रही है। विभीषण रावण का शिकार हो गया। सरनाम उलझा-उलझा रहता है, बंसिरी अस्पताल में है—जाये भी कहाँ। और कमला तो जैसे बिल्कुल बदल गयी। उसकी हँसी न जाने कहाँ खो गयी। शिवराज से लिखा भी नहीं जाता, कुछ लिख पाता तो शायद यह घुटन कम होती। जिन्दगी की इतनी उलझनों में प्यार-स्नेह की बातें भी करने को जी नहीं चाहता, हर वक्त एक आग धधकती है…

…रंगीले पिछले दिनों मुकद्दमे की चाल से समझ रहा था कि सचमुच जीवन में जरूरत सब की पड़ती है। ऐसे पलटे खा रहा था मुकदमा कि उसकी समझ के बाहर होता जा रहा था। घर आता, चुप पड़ा रहता—बंसिरी की हालत नाजुक थी, दिन-रात घंटा-मिनट लगा था। अस्पताल में ही प्रसव का इन्तजाम हो सकता था, और क्या होता ? सुबह उठकर निकल जाता। चरही में हाँफ-हाँफ कर पानी भरता, भजन भी नहीं गुनगुनाता। खामोशी से चरही भरता और घर लौट आता, जैसे दुनिया से कट गया हो, देखकर बंसिरी परेशान होती, पर उसे एक ही सन्तोष था—वह सरनाम को सात साल के लिए जेल जाते हुए देख पायेगी…देख भी पायेगी या नहीं, मन कैसा होगा ! पछतावा तो नहीं होगा ? पछतावा कैसा…

रंगीले इधर कहीं से बिल्ली के बच्चे पकड़ लाया था, उन्हीं से उलझता रहता, बंसिरी पर कभी-कभी गुस्सा भी आता। किस झंझट में डलवा दिया। जनने का समय सर पर और यह मुसीबत पीछे लगी है, दिमाग को फुर्सत ही नहीं मिलती।

बंसिरी ने सहारा खोजा, गेंदा कवि को चिट्ठी डाली कि वह कुछ दिनों के लिए यहाँ चला आये। अभी तक कोई जवाब भी नहीं आया। रमते जोगी का कौन ठिकाना…

सरनाम के सर पर दोहरी तलवार लटक रही है। हाकिम के रुख का कुछ पता नहीं चलता, न जाने ऊँट किस करवट बैठे। और इस लाइन के मोटरों के राष्ट्रीयकरण की खबरें जोर पकड़ती जा

रही हैं। अपनी बसें चलाकर पिछले दिनों सरकार को बहुत फायदा हुआ है, वह अपना फायदा देखती है, मजदूर का पेट नहीं। आखिर क्या इन्तजाम होगा इन ड्राइवरों और क्लीनरों का, जो बेकार होकर बैठ जायेंगे। सरकारी ड्राइवर आयेंगे, तब इन्हें कहाँ काम मिलेगा भला।

मोटर मालिक यूनियन के मालिकान लखनऊ की दौड़-धूप में लगे हैं, धड़ाधड़ प्राइवेट कैरियरों के लैसंस बनवा रहे हैं, दस-दस, पाँच-पाँच हज़ार देकर, जैसा सौदा पट जाय। पर इन मजदूरों का पेट कट जायगा। मालिक भी क्या करें? भागते भूत की लंगोटी पर संतोष कर रहे हैं। सरनाम के मोटर-मालिक जैन बाबू लखनऊ जाते हुए थोड़ी देर के लिए रुके थे, बड़ा अफसोस था उन्हें, उन्होंने ही खबर दी थी—'अगली पहली से सरकारी बसें चलने का आर्डर हो गया है। क्या करें भाई। बहुत कोशिश की पर कुछ हुआ नहीं···लैसंस मिलने वाली बात दबा गये। कहते थे—'क्या बतायें, तुम लोगों से प्रेम-मुहब्बत हो गयी थी, पर मजबूरी है। मेरा बस चलता तो अपने एक भी आदमी को बेकार न होने देता, लाचारी है अब तो?'

सरनाम पिछले दिनों से छुट्टी पर था। फैसले की तारीख बढ़ती जा रही थी। शिवराज के रंग-ढंग समझ में नहीं आते। रंगीले से वह मिलना चाहता था, पर वह मुँह चुराये था। सामने ही नहीं पड़ता। बड़ा मन करता, एक बार बात तो कर ले—फैसले के बाद ये सब शक्लें समय की लम्बी दीवार की ओट हो जायेंगी, लम्बे सात साल—कौन जिये, कौन मरे···कौन भटक जाये। मन की बात तो कर लेता···और···और उस बंसिरी को एक बार देख तो लेता, जिसका शाप धारण करके वह चुपचाप चला जाने को तैयार है। मन बेहद डूबता है। हर तरफ खण्डहर नजर आते हैं, हर इमारत ध्वस्त है, बरबादी···टूटन और अकुलाहट। पर मन न जाने कैसा हो गया है। वैर, घृणा, द्वेष से ऊपर उठ गया है। दुश्मन-दोस्त सब बराबर

हो गये हैं। जी करता है, हरेक से लिपट-लिपट कर रोये, खूब रोये··· आँखों से ओझल होने वाली इन गलियों, सड़कों, दुकानों, बाज़ारों को अच्छी तरह देखकर अपनी आँखों में अंकित कर ले। वे छूटती हुई राहें-पगडंडियाँ। ये गलियाँ, ये सड़क। चेहरे···दुःख-सुख···ज़िन्दगी की गति। घने इमली वृक्षों की छाँह और गुरगुरा कर भागने वाली मोटरें···पेट्रोल और मोबिलायल की महक, कालिख से पुती श्रमशील अंगुलियाँ···चौराहे, चाय की दुकान। और वह मशीनों की दुनिया, टूटे कल-पुर्जों का संसार···और उसकी एकांतिक वेदना का साथी बैंजो।

सोचकर मन को धक्का लगता है—इस अड्डे का सब कुछ बदल जाएगा। धूल खड़खड़ाती मोटरें खामोश हो जायेंगी। शाम को जाने वाली ताश पत्तों की महफिल वीरान हो जाएगी। ये दिलेर लोग बिखर जायेंगे। एक जिन्दगी ही खत्म हो जाएगी। कैसे देखोगे यह सब। अच्छा होता, पहले फैसला सुनायी पड़ता और वहीं से अपनी सूनी राह पर चला जाता, यह सब न देखता, इन आँखों से। सचमुच देखा नहीं जायेगा। वह कचहरी से सीधा चला जायगा, इधर आयेगा ही नहीं। सरकारी बसें पहली तारीख से चलेंगी और फैसले की तारीख है तीन। बोतल···बोतल···होशोहवास गुम कर देने वाली दवा।

और उसने यही तय किया था। वह कल ही बाहर चला जायेगा। बस तीन तारीख की सुबह स्टेशन पर उतर कर सीधा कचहरी जाएगा और वहाँ से सीधा उस अनन्त, सुनसान राह पर। उन सींखचों के पीछे, जो अपने सिवा और कुछ देखने नहीं देते।

जाने से पहले रंगीले और बंसिरी को देखने का मन करता था—रात की गाड़ी से उसे जाना था। भीतर-ही-भीतर कुछ छटपटाता है···उसके पैर उठते जाते हैं और वह रंगीले के मकान वाली गली में है। वह कैसे आ गया यहाँ। दूर खड़ा होकर मकान देखता है—टाट के पर्दे से लालटेन की रोशनी छन रही है···एकटक देखता है—कोई छाया गुजरती है उस पर्दे के पीछे—शायद बंसिरी···ज़रा हटा-

कर झाँक तो लेती एक बार। नहीं, शायद रंगीले होगा—मेरे दोस्त। तेरे कन्धे पर सर रख कर रो लूं आज। मैंने कुछ भी बुरा नहीं माना—सच बंसिरी···सच रंगीले। यही तो मुझे पाना था एक दिन। तुमने क्या किया है ? वह घर के सामने से कई बार गुज़रता है—प्यासी आँखों से ताकता है, हर बार···अब तो रोशनी भी नहीं, क्या करेगा मिलकर···विदा। मुझे माफ करना तुम दोनों···

चलती गाड़ी से सर निकाले हुए सरनाम अपने उस छोटे से स्टेशन को पीछे छूटते हुए देखता रहा···गाड़ी चलती गयी···दूर बस्ती की बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं···अंधेरी रात में यादों की लौ-से चिराग ! बस्ती वीरानी हो गयी—अब यह मोहक, नशे में डूबी उदास रातें वह कहाँ देख पाएगा। डबडबायी हुई आंखों के पार सब डूब गया···।

३२

बाजामास्टर अपने चेहरे पर खड़िया पोत कर स्टेज पर जाने के लिए तैयार होते हैं, कपड़े बदलते हैं और अभिनेताओं की तरह हाथ फटकार-फटकार कर कहते हैं—'हबीब साहब मारे गये। हा···हा···हा···' उनकी हँसी सुनकर कमला डर जाती है। फिर वह फुसफुसाकर कहते हैं—'देखा लीला। तुझे जिन्दा कर दिया मैंने···' 'कहते-कहते नाखूनों से अपना मुँह नोच डालते हैं···खून की धारियाँ त्वचा पर उभर आती हैं, शक्ल और भी डरावनी हो जाती है। कमला उन्हें पकड़ कर कोठरी में बन्द कर देती है और खुद देहरी पर बैठकर घण्टों रोती है, आँखें सुजा लेती है।

शिवराज से नहीं देखा जाता यह सब। एक दिन उसकी सूजी आँखों को देखकर बोला—'कमला, रोओगी तो मैं सब तहस-नहस कर डालूंगा, मेरी तरफ देखो···।'

कमला ने देखा, उसकी उदास आँखों में ममता-भरी थी। बहुत

बोझ से वह बोला था—'अगर तुम्हें दुख होता है तो चलो हम आज शादी कर लें, जो होगा देखा जायेगा···।'

कमला बोली—'मुझे गलत मत समझा करो।' आँखें झुकाए-झुकाए ही वह आगे बोली थी, 'मैं कब कुछ कहती हूँ। कुछ छिपा तो नहीं मुझसे।'

शिवराज का गला रुँध आया था, 'जरा पैर जमा लूं कमला वैसे तुम्हें आज बंसिरी दीदी के पास ले चलता, पर वह अस्पताल में जाने वाली है।'

'मैं मास्टरजी को ऐसे छोड़कर जाती भी नहीं, इन्हें कौन देखेगा।' कमला ने कहा था।

बाजामास्टर की हालत का प्रसंग आते ही शिवराज घबरा-सा गया, पर बोला, 'सब ठीक होगा···ठीक होगा कमला।'

कमला उसके कन्धे पर सर रखे बड़ी देर सन्तुष्ट-सी खड़ी रही थी। अपनी लिखी हुई कविताएँ कमला को दिखाकर वह तिवारी के पास चला गया। स्कूल कमेटी के निर्णय के खिलाफ तिवारी की अर्जी जिला विद्यालय निरीक्षक के पास पहुँचानी थी—उसे मौका देखकर निकाला गया है। सर्विस बुक उसकी मेहनत और ईमानदारी की गवाह है, पर वह कोई देखता नहीं। उसमें स्थान पर एक कायस्थ मास्टर की नियुक्ति भी हो गयी, पर अभी तक कोई सुनवाई नहीं हुई—

बाजामास्टर वैसे ठीक रहते हैं, पर कुछ दिन ठीक रहने के बाद अकस्मात न जाने क्या हो जाता है और वे कभी-कभी कमला की आँख बचाकर बाहर निकल जाते, गलियों में ठहाके लगाते—'लड़ाई ···बम् बम्।' कभी दार्शनिक हो जाते। तम्बाकू वालों की दुकान पर बैठकर लोगों को समझाते—'सीधी सड़क है एक। पर···हर गली में आदमी घूमता है।' जमीन पर थूक कर पहियों की तरह हाथ चलाते हुए छुक-छुक करते वे किसी गली में दौड़ जाते हैं, शोर मचाते

हैं, गालियाँ बकते—दो दिन कमला इन्तजार करती फिर कभी अपनी रौ में वह कमला को पुकारते हुए लौटते हैं और घर आकर पड़ जाते हैं—सोते हैं हँसते हैं, रोते हैं।

···बस्ती का जीवन बोझिल उदासी से भर गया था। कोई मेला-तमाशा नहीं, ऋतु के त्योहार नहीं, शादी-ब्याह नहीं, राजनीतिक हलचल नहीं। जैसे घूमता हुआ चरख थक कर स्थिर हो गया हो। वही चिर-पहचाने काम काज—धीरे-धीरे रेंगती जिन्दगी। कुछ ऐसी खामोशी छायी थी शहर पर कि चौराहों पर होने वाले लड़ाई-झगड़े भी सुनाई पड़ते थे। सड़क पर कोई गाय-बकरी को भी नहीं हुलकारता। वक्त से मोटरें आतीं, अड्डे पर खड़ी हो जातीं, भरतीं—चली जातीं। स्टेशन से इक्के कंकड़ की सड़क पर खड़-खड करते आते और किसी पेड़ की छाँह में रुक जाते। घोड़ों के मुँह में रातब की बाल्टियाँ लटका कर इक्के वाले बेकारी की नींद सोते या घोड़े की मालिश करते।

और यह सब था मंडी की वजह से जहाँ सारा कारोबार अगली फसल तक के लिए लगभग ठप था। मंडी के फड़ों पर तोला लोग बैठकर रामायण बांचते और मुनीम पुराना हिसाब मिलाकर रोकड़ बही ठीक करते···एकाध पनचक्कियों की पुक-पुक की तीखी आवाज बस्ती की धड़कन की सूचना देती···

जिन्दगी ऐसे बह रही थी, जैसे उतार पर आयी नदी। आसमान पर न बादल आते, न धूप छाती। अबाबीलों के झुंड जो आसमानी ऊँचाइयों पर उड़ा करते थे, न जाने कहाँ खो गये थे। ऊंघता हुआ पिंजर-सा शहर—रीढ़ की हड्डी-सी अकेली सड़क और उसमें पसलियों की तरह जुड़ी हुई सत्तावन गलियाँ! जब सड़क पर हलचल होती तो गलियाँ भी थरथरातीं।

३३

और रंगीले अपने मुकदमे का फैसला सुनने के लिए बेचैन था। उदासी ने उसे बांध रखा था—फैसले का दिन। बंसिरी के दर्द उठ रहे हैं। वह सुबह उसे अस्पताल में छोड़ता हुआ कचहरी चला गया। गेंदा कवि का आसरा देखता रहा, शायद आ जाय, पर नहीं आये, अभी तक। मन में हजार शंकाएँ थीं—न जाने क्या हो जाय···

और स्टेशन पर सुबह की गाड़ी से सरनाम उतरा। परदेसी की तरह। शिवराज को देखने का मन था, उसे बुलवा लिया था। शहर की तरफ आया भी नहीं। सीधा कचहरी चला गया था···।

कचहरी के अहाते में खासी भीड़ थी। बाबू लोग भी अपना-अपना काम छोड़ कर डकैती का फैसला सुनने के लिए जमा थे। गिरफ्तार मुजरिमों को जेल से लाया गया था। सरनाम ऐसे घूम रहा था, जैसे किसी को पहचानता तक नहीं, उसकी आँखें रंगीले को खोजती रहीं, पर वह जज के आने पर इजलास में दिखाई पड़ा।

और सन्नाटे के बीच जब डकैती के मुजरिमों की रिहाई का फैसला सुनाई पड़ा तो कमरा गूंज उठा। गूंज-अनुगूंज और पचासों कण्ठों का तुमुल कोलाहल। मुजरिमों के रिश्तेदार और साथियों ने कमरा सिर पर उठा लिया—और उस हर्ष और मुक्ति के आह्लाद में किसी ने आगे की बात नहीं सुनी···।

रंगीले का कलेजा धक्-से रह गया। सब उलट गया—झूठी गवाही देने के जुर्म में तीन साल की सख्त कैद। आँखों के नीचे अँधेरा छा गया···यह क्या हुआ मेरे भगवान्। अब क्या होगा? सर पकड़ कर वह वहीं बैठा रह गया। बेहोशी-सी आ रही थी—और पुलिस की हथकड़ियाँ उसके कानों के पास हजार-हजार घंटों की तरह घनघना रही थीं—।

चाह कर भी सरनाम उसके पास सान्त्वना देने नहीं जा पाया। कटे पर नमक छिड़कना हो जायेगा अब तो। पर मन चीत्कार करता रहा—अभी भी कोई उसे दंद करके रंगीले को छोड़ दे—।

शिवराज मिला तो उसने आँखें पोंछते हुए कहा—'भगवान् की यही मर्ज़ी थी। बरबस हो गया मैं तो। भइया, जरा उसका ख्याल रखना, अस्पताल में देखभाल रखना, तुम्हारे ऊपर ही छोड़े जाता हूँ उसे, जरूरत पड़े तो उसका एकाध जेवर बेच लेना, पर गड़बड़ न होने पाये—'कहते-कहते उसका स्वर डूब गया था।

शिवराज ने आश्वासन दिया, 'बिल्कुल चिन्ता की बात नहीं है। मैं पूरी देख-भाल रखूंगा। दस-पांच दिन नहीं, हमेशा। हमेशा। कमला को उसके साथ कर दूंगा। अस्पताल से जब वह घर आयेगी, तो मैं वहीं रहने लगूंगा—।'

रंगीले की आँखों में याचना-भरी कृतज्ञता थी। देखा नहीं गया शिवराज से। सैकड़ों चिन्ताएँ, अभिलाषाएँ उसके मन में घुमड़ रही थीं, बहुत कुछ कहना चाहता था, पर कुछ भी नहीं कह पाया। बोला—'गेंदा कवि को जरूर बुला लेना।' फिर मुँह नीचे झुकाकर

बोला था—'और सरनाम भइया से कहना—'मुझे माफ करें—।'

इसके बाद वह कुछ भी नहीं बोल पाया। दो सिपाहियों की हिरासत में जेल वाली सड़क पर सिर झुकाये चलता चला गया था।

सरनाम का मन बेहद उदास था। घूमता-घामता जब घर की तरफ आया तो अड्डे पर जाकर बैठने को जी हुआ—बिलकुल भूल ही गया था कि यहाँ नयी सृष्टि होगी—

देखकर बड़ी चोट पहुंची मन को—वे तखत जिन पर ड्राइवर और क्लीनर लस्त होकर पड़ रहते थे, अब नहीं थे। वहाँ सरकारी बसों का टिकट घर खड़ा था। छप्पर वाली कोठरी की जगह टीन का शेड पड़ा था। और नीली-नीली बसें शान से खड़ी थीं—वर्दी धारी ड्राइवर और कण्डक्टर इधर-उधर आ जा रहे थे। सवारियाँ एक तरफ कायदे से बैठी थीं, जैसे विदेश में यात्री पड़े हों। वह अपनापन, वह मेल-मुहब्बत, जान-पहचान, सब खो गयी थी। परिचित चेहरे न जाने कहाँ छुप गए थे। उजड्ड किसानों की नजरों में खौफ-सा समाया था। टूटी बाड़ीवाली लारियाँ, इमली के नीचे खड़ी होने वाली बीमार मोटरें सब लापता थीं। वह हंगामा नहीं था···वह ज़िन्दगी नहीं थी···सब-कुछ नया था, अच्छा था, पर सब अच्छाइयों के बीच कुछ ऐसा था जो नहीं था···रीता···रीता···उजड़ा-उजड़ा। सिर्फ एक पुरानी मशीन पड़ी थी, जहाँ-की-तहाँ, उसकी चिर-पहचानी, उसी के पास जाकर बैठा रहा, अपनापन था उसमें उसके लिए भी मन में कहीं कोई जगह थी···

पहले दिन सरनाम ने स्वयं शिवराज को अस्पताल भेजा था—'कोई तकलीफ न होने पाये उसे। जिस चीज की ज़रूरत हो मुझसे बताना।'

दूसरे दिन वह खुद गया था, घर कैसे देखे उसे? सुख-दुःख कैसे पूछे? नर्स से चुपचाप हाल पूछ कर चला आया। सुबह-शाम मन ही नहीं मानता। उसके पैर उसे अस्पताल के फाटक पर ला कर खड़ा

कर देते हैं। हर बार हिचक होती है। तरह-तरह के खयालों में डूबा वह फाटक के आस-पास घूमता रह जाता। लौटने को होता है, पर अनजाने-अनचाहे ही भीतर घूमकर नर्स से हाल पूछ कर वापस चला आता है···शिवराज पूरी देख-भाल करता है, जाकर बंसिरी के पास कुछ देर बैठता है, बंसिरी और बच्चों का हाल जानने की उत्सुकता देखकर सरनाम पर आश्चर्य होता है···

गेंदा कवि आ गये थे। इस बीच···शिथिल तन, शिथिल मन। गेरुआ वस्त्र, गले में कंठी और हाथ में चिमटा। आँखों में वैराग्य और कंठ में कबीर। धीरे-धीरे चिमटा पर गुनगुनाते हैं···'कबीरा गरब न कीजिए कबहूँ न हँसिए कोय···आपन नाव समुद्र में ना जाने का होय।' मन को शान्ति मिलती है इससे, मोह-माया का जंगल कटता है···

बाहर सन्नाटा है—जैसे घंटे बजाता हुआ हाथी गुजर गया हो। सड़क पर आवारा जानवर घूमने लगे हैं। रंगीले के बिना चरही सूखी पड़ी है, प्यासे जानवर भटकते हैं। और कमला पागल बाजा-मास्टर को कोठरी में बन्द किये उस दिन की राह देख रही है, जब शिवराज अपने पैरों खड़ा हो पायेगा।

लेकिन जाने वालों को यही अफसोस था कि अस्पताल में बच्चों को लिए पड़ी बंसिरी का क्या होगा? कौन देगा सहारा उसे···

शाम हो गई थी। गेंदा कवि चौराहे वाली मठिया पर अफीम की पीनक में लेटे नीम और इमली की गहरी पड़ती कालिस को देखकर दार्शनिक की तरह कह रहे थे 'दुनिया में कोई किसी का नहीं। कोई किसी को सहारा नहीं देता, सब मतलब के यार हैं···'

किसी ने बात जोड़ दी, 'दोस्त दुश्मन हो जाता है महाराज! सरनामसिंह के खिलाफ रंगीले गवाही देगा, यह भी किसी ने सोचा था? उलटी धारा बह रही है। अब सरनाम बदला लेगा उसके बाल-बच्चों से।'

तभी सड़क से दो छायायें गुजरती दिखाई पड़ीं। एक आदमी, जिसकी गोद में छोटा-सा बच्चा था और पीछे पीछे आती हुई एक औरत। गेंदा कवि ने आँखें फाड़कर देखा और पुकारा—'कौन सरनामसिंह।'

'हाँ गेंदा महाराज। क्या बात है?' सरनाम ने रुककर जवाब दिया।

'साथ में कौन है, कोई रिश्तेदार आ गया क्या···?'

'बंसिरी है गेंदा महाराज।' करते हुए वह आगे बढ़ गया 'अस्पताल से ले आया हूँ इसे·· वहाँ कब तक पड़ी रहती···'

बंसिरी के बच्चे को गोद में लिए आगे-आगे सरनाम चला जा रहा था और उसकी चट्टान-सी पीठ को निहारती पीछे-पीछे चली जा रही थी बंसिरी। सड़क पार कर गली में रंगीले के घर का ताला खोलकर बच्चे को देकर सरनाम बोला, 'घर में दिया बत्ती जला ले। मैं चल रहा हूँ। रंगीले नहीं है तो अकेला मत समझना अपने को। कुछ जरूरत हो तो मुँह खोल के कह देना···जा···भीतर जा···'

और अपनी गली के लिए मुड़ते हुए सरनाम ने हल्की-सी रोने की आवाज सुनी थी···पता नहीं बंसिरी क्यों रो पड़ी··यही सोचता हुआ वह अपने सुनसान घर में लौट आया था।

The end

●●

पूर्व प्रकाशित कुछ स्टार पॉकेट बुक्स

उपन्यास

सावली रात	गुलशन नन्दा	२.००
कलकिनी	"	२.००
राख और अंगारे	"	२.००
घाट का पत्थर	"	२.००
जलती चट्टान	"	२.००
टूटे पंख	"	२.००
शीशे की दीवार	"	२.००
सांझ की बेला	"	२.००
सितारों से आगे	"	२.००
अँधेरे चिराग	"	२.००
गेलार्ड	"	३.००
नीलकंठ	"	३.००
देव छाया	"	२.००
पांच लोफर	"	१.००
एक लड़की हजार दीवाने	कृश्न चन्दर	१.००
बावन पत्ते	"	२.००
एक हीरोइन पांच लोफर	"	२.००
लन्दन के सात रंग	"	२.००
खून का प्यासा	कुशवाहा कान्त	२.००
उसके साजन	"	२.००
दानव देश	"	२.००
धूप छांव	आरिफ मारहर्वी	२.००
पत्थर के फूल	"	२.००
रैन बसेरा	"	२.००